मूल्य : 20/-
पंजी. संख्या : 153/2016-17

वर्ष : २
अक्टूबर २०१७, विक्रमी सम्वत् २०७४
सृष्टि सम्वत् १९६०८५३११८, दयानन्दाब्द १९४
अंक : १६

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ।।

सत्य और ज्ञान से भरपूर आर्यसमाज नोएडा का मासिक मुखपत्र

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

"सा प्रथमा संस्कृतिविश्ववारा"

नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।।

ईश्वर का व्यापक ज्ञानस्वरूप पूज्य और सहज स्वभाव जानकर हम उसकी उपासना करें तथा जीवन में सदा सत्य का आचरण करें।

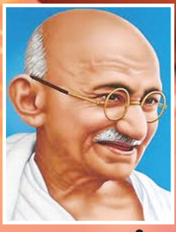

महात्मा गांधी
(जन्म दिवस : 2 अक्टू.)

लाल बहादुर शास्त्री
(जन्म दिवस : 2 अक्टू.)

महात्मा आनंद स्वामी
(स्मृति दिवस : 24 अक्टू.)

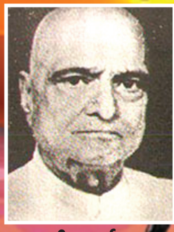

स्वामी समर्पणानन्द
(स्मृति दिवस : 28 अक्टू.)

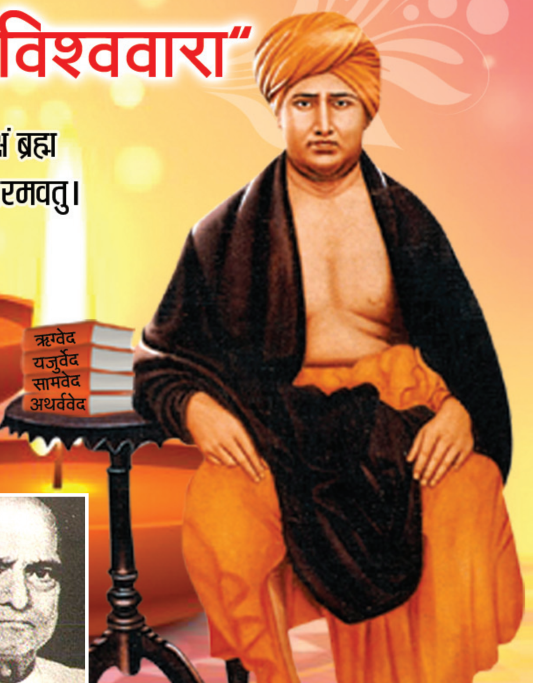

युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती
(1824-1883)

आरडब्ल्यूए सेक्टर-12, नोएडा में आर्ष गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने ड्राइंग, प्रतियोगिता में भाग लेते हुए।

ठाकुर विक्रम सिंह ट्रस्ट के सौजन्य से ठाकुर विक्रम सिंह के 75वें जन्मदिवस के अवसर पर आर्य समाज डिफेंस कालोनी दिल्ली में 'आर्यन सम्मान समारोह' का भव्य आयोजन किया गया। पूर्व की भांति अनेकों आर्यों को उनके द्वारा समाज में किए जा रहे प्रचार-प्रसार कार्यों के लिए सम्मानित किया गया। आर्य समाज नोएडा के महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शबनम गुलाटी जी को सम्मानित किया गया। उसी पल के कुछ चित्र। यह आर्य समाज नोएडा के लिए गौरव की बात है। तदर्थ बधाई : **संपादक**

ओ३म्

।। कृण्वन्तो विश्वमार्यम्।।

विश्ववारा संस्कृति

मानवीय जीवन मूल्यों की संरक्षक पत्रिका

संरक्षक
श्री आनंद चौहान, श्री सुधीर सिंघल
श्री रविन्द्र सेठ 'प्रधान'

प्रबंध संपादक
महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

प्रधान संपादक
आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

व्यवस्थापक
ओमकार शास्त्री

प्रकाशक और मुद्रक
स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं प्रधान संपादक डॉ. जयेन्द्र कुमार द्वारा वत्स ऑफसेट, मुद्दा हाऊस, सी-ब्लॉक, बारात घर, चौड़ा रघुनाथपुर, सेक्टर-22, नोएडा से मुद्रित एवं आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, गौतमबुद्धनगर से प्रकाशित किया।

Title Code : UPMU-200652

घोषणा पत्र संख्या : 153/06.06/2016-17

मूल्य

एक प्रति	: 20/-	वार्षिक	: 250/-
पांच वर्ष	: 1100/-	आजीवन	: 2500/-

विदेश में वार्षिक शुल्क : 3100/-

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ
1.	संपादकीय	2
2.	आत्मा का भोजन : उपासना	3
3.	विश्वानि देव सवितः	4-5
4.	ज्योतिष वेदांग क्यों?	6-7
5.	वेद और श्राद्ध तर्पण	8-9
6.	महर्षि निर्वाण दिवस पर...	10
7.	महर्षि दयानन्द के अनमोल...	11
8.	आर्य समाज का अष्टम नियम...	12-13
9.	पर्व की पवित्रता बनी रहे	15
10.	वेद ऑन कल्चरल यूनिटी...	16-17
11.	बहुमुखी प्रतिभा के धनी...	18
12.	वेद और धर्म...	20-21

पाठकवृंद : कृपया स्वयं समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए 'विश्ववारा संस्कृति' के आजीवन सदस्य बनकर जीवन पथ को पुष्पित, प्रफुल्लित और प्रमुदित करें। अपका चित्र पत्रिका में प्रकाशित होगा। आपके बहुमूल्य सुझावों का हम स्वागत करते हैं।

लेखकवृंद से अनुरोध है कि रचना मौलिक एवं अप्रकाशित हो, रचना का लेखन स्पष्ट और सुपाठ्य हो। दो प्रतियां उस रचनाकार को भेज दी जाएगी, जिनकी रचना प्रकाशित हुई है।

विज्ञापन दर

पिछला कवर पृष्ठ	:	5100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-2	:	3100 रुपये
कवर पृष्ठ नं.-3	:	2500 रुपये
पूरा पृष्ठ अंदर	:	1000 रुपये
आधा पृष्ठ अंदर	:	600 रुपये

'विश्ववारा संस्कृति' में सभी पद अवैतनिक हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय क्षेत्र गौतमबुद्धनगर होगा।

संपादकीय कार्यालय

आर्य समाज, बी-69,
सेक्टर-33, नोएडा- 201301
गौतमबुद्धनगर, (उ.प्र.)
दूरभाष : 0120-2505731, 4206693, 9871798221

Web : www.aryasamajnoida.org, E-mail : info.aryasamajnoida33@gmail.com

संपादकीय...

।।ओ३म्।।

जीवित माता-पिता की श्रद्धा से सेवा श्राद्ध तथा सेवा से उनको तृप्त करना ही तर्पण है

महर्षि दयानन्द सरस्वती की शास्त्रों को समझने की गहन दृष्टि है। वे शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। शास्त्रों में छुए हुए गहन भाव को बड़ी सरलता से समझते हैं तथा उन पर बहुत ही व्यवहारिक विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं– पितृ तर्पण एवं श्राद्ध को लेकर पौराणिकों ने अत्यंत भ्रांति फैला रखी थी। पौराणिकों के अनुसार अश्विन मास पितृपक्ष कहलाता है। माता–पिता तथा अन्य पितरों की मृत्यु होने पर पौराणिक लोग इस पितृपक्ष में अपने मृतकों की तिथि के अनुसार उनके निमित्त ब्राह्मण को भोजन कराकर, वस्त्र और दानादि देकर मृतकों का श्राद्ध तर्पण कर अत्यंत संतुष्टि का अनुभव करते हैं। ये लोग वर्ष में एक बार इसी पितृपक्ष में ही मृतकों का श्राद्ध तर्पण करते हैं किंतु हमारा वैदिक धर्म कहता है कि पितरों का श्राद्ध तर्पण वर्ष में एक बार नहीं प्रतिदिन करना चाहिए। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लासम्म में पितर एवं श्राद्ध तर्पण के विषय में लिखते हैं– जो संतानों का अन्न और सत्कार से रक्षक व जनक हो वह पिता। पितुः पिता पितामहः, पितामहस्य पिता प्रतितामहः जो पिता का पिता हो वह पितामह और जो पितामह का पिता हो प्रपितामह। 'या मानयति सा माता' जो अन्न सत्कारों से सन्तानों का मान करे वह माता। या पितुर्माता, सा पितामही, पितामहस्य माता प्रपितामही जो पिता की माता हो वह पितामही और पितामह की माता हो वह प्रपितामही। अपनी स्त्री तथा भगिनी संबंधी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्रपुरुष वा वृद्ध हो उन सबको अत्यंत श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुंदर यान अर्थात् सोने के लिए उत्तम विस्तरादि देकर अच्छे प्रकार से तृप्त करना अर्थात् जिस–जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस–उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध तर्पण कहाता है।

■ आचार्य डॉ. जयेन्द्र कुमार

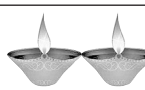

ज्योति पर्व दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएं

आर्य समाज, आर्ष गुरुकुल, वानप्रस्थाश्रम नोएडा द्वारा समस्त जनों को दीपावली के पुनीत पर्व पर हर प्रकार की सुख, समृद्धि, स्वास्थ्य और शांति की कामना से परिपूर्ण बधाई।

दीपावली के दिन ही महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण समस्त आर्यों के लिए ईश्वर भक्ति के मार्ग की सर्वोच्च प्रेरणा बने, ऐसी परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है।

- प्रबंध संपादक

दयानन्द दीप तुम ऐसे कभी भी बुझ नहीं सकते कि जाते-जाते लाखों दीपों को तुमने जलाया था : भारत देश प्राचीन काल से ऋषि महर्षियों की तपस्थली का केंद्र रहा है, इस पावन धरा पर देवता भी जन्म लेने के लिए तरसते हैं। उन्हीं देवों के दिव्यगुणों से युक्त भारतभूमि पर एक विलक्षण बालक का जन्म हुआ। जो बाद में महर्षि दयानन्द सरस्वती के नाम से विख्यात हुआ। महर्षि भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों के अंधकार को एक दीपक के समान झकझोर देने वाले महापुरुष थे। गुरु स्वामी विरजानंद जी की आज्ञा को आचार्य देवो भवः की पवित्र भावना से शिरोधार्य करके अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र सेवा के लिए समर्पित कर दिया। स्त्री शिक्षा, सती प्रथा, मूर्तिपूजा इत्यादि को वेद विरुद्ध सिद्ध करके विरोधियों को धूल चटाकर वैदिक धर्म को सबसे पवित्र बताया। महर्षि के दस नियम किसी भी समाज को मेरुदण्ड के समान साधे रखने में सक्षम है। सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना समाज का सर्वविध विकास करने के लिए बम्बई से हुआ। जो आज एक विशाल वटवृक्ष के रूप में फल-फूल रहा है। 29 सितम्बर 1883 को उन्हें भयंकर विष दिया गया कितु अपने ब्रह्मचर्य के बल से ही वे लगभग एक माह तक जीवित रहे और 30 अक्टूबर 1883 तदनुसार विक्रमी संवत 1940 कार्तिक बड़ी अमावस्या को दीपावली के पर्व पर इस भौतिक शरीर का त्याग कर निर्वाण पद प्राप्त किया। कितु अपने सत्कर्मों से वे आज भी भारतीयों के जनमानस में शरदपूर्णिमा के चंद्र के समान व्याप्त हैं। आइये महर्षि के सपनों को पूर्ण करके उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित करें- **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्...।**

आत्मा का भोजन : उपासना

प्रबंध संपादक
महामंत्री आर्य कै. अशोक गुलाटी

उपासना से जीवन निर्मल, शुद्ध, पवित्र बनता है। उपासना-पास बैठना। किसके पास, अपने से बड़ी शक्ति के पास। जैसे एक मां अपने बच्चे को छाती से चिपका लेती है, वैसे ही प्रभु अपने उपासक को हाथ बढ़ाकर अपने से चिपका लेते हैं। जैसे माता की गोद में आकर बच्चे को सच्चा सुख व शान्ति मिल जाती है। परमेश्वर तो सारे संसार की माता-पिता है, रक्षा करने वाला है। सबके दुःखों को दूर करने वाला है। ऐसे दयालु, सर्वरक्षक, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, अजर-अमर, आनन्दस्वरूप परमात्मा की उपासना में क्या नहीं मिलता। उस परमपिता परमात्मा की गोद में आकर उपासक समस्त संकटों को, दुःखों को, भयों को पार कर जाता है।

महर्षि दयानन्द ने लिखा है, जब उपासना करना चाहें उसके लिए यही आरम्भ है कि वह किसी से बैर न रखे, सर्वदा सबसे प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, अभिमान न करे। सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो निरभिमानी हो, अभिमान न करें ये यम मिलकर उपासना और योग के प्रथम अंग हैं। अष्टांग योग के द्वारा ही परमेश्वर के समीपस्थ होने का नाम उपासना है। परमेश्वर सर्वदा सबके पास विद्यमान है केवल हमें उसकी अनुभूति नहीं होती।

पूर्ण पवित्र होकर ईश्वर के सच्चे उपासक बनें। धार्मिक विचारों वाले बनकर सर्वत्र सुख का साम्राज्य प्राप्त कर सकें। हम ईश्वर के सच्चे उपासक बनकर अंधविश्वास से बचें। ऐसा करने से हम अपने जीवन के मुख्य उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे। इस मानव जीवन में आकर हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करना है तो हमें संसार में प्रत्येक कार्य करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह कार्य लोक कल्याणार्थ अथवा पवित्र हो तथा हमें संसार से लिप्त न होकर ईश्वर की ओर ले जाने वाला हो। उपासना के लिए पूरी तैयारी करनी पड़ती है। उसके योग्य बनना होता है। मन में तीव्र उत्कंठा होनी चाहिए। आत्मा में भूख होनी चाहिए, बिना इच्छा के उपासना में बैठना ऐसा है जैसे बिना भूख के भोजन करना। उपासना आध्यात्मिक भोजन है। उसके लिए तीव्र भूख जगानी होगी। परमेश्वर हमारा गुरु, माता-पिता, बंधु-सखा है। ऐसे परम सहायक को प्राप्त करके उपासक को किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। उपासना के द्वारा ही भक्त भगवान के साथ मित्रता स्थापित कर सकता है। जिसे बनाने के लिए हमें परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए। उसी की उपासना से हमें शान्ति, संतोष एवं परमसुख प्राप्त होगा।

हमें अपने मन को शुद्ध पवित्र बनाने के लिए प्रभु की उपासना करनी चाहिए। उपासना के द्वारा हम अपने अन्दर उस परम शक्ति को जागृत करते हैं जो कि उस आवाज को सुन सकें। जिसके माध्यम से हम उस परमात्मा से सीधी बात कर सकें। ये कठिन नहीं क्योंकि वह हमारे हृदय में विराजमान है। बस आवश्यकता है उस ओर प्रयास करने की, कदम बढ़ाने की। प्रभु हमारे अत्यन्त निकट है। हमारे हृदय में ही विद्यमान है। उपासना ही वह दर्पण है जिसके माध्यम से हम उस प्रभु का साक्षात् स्वरूप देख सकते हैं। हमारे में ये विश्वास होना चाहिए कि हम प्रभु को अत्यन्त निकट से देख रहे हैं। वार्तालाप कर रहे हैं। उपासना के लिए व्यक्ति में बाहरी व आंतरिक पवित्रता होनी चाहिए क्योंकि प्रभु परमपवित्र है इसी पवित्रता तथा आनन्द की प्राप्ति के लिए हमें उपासना करनी चाहिए। परमेश्वर की उपासना में उपासक का स्वभाव बदलना चाहिए। उसके जीवन में नवीनता आनी चाहिए। परिवर्तन हो। परमपिता दयालु है तो उपासक के हृदय में भी दया का भाव होना चाहिए। यदि वह न्यायकारी है तो उपासक को भी जीवन में न्याय व ईमानदारी का व्रत लेना चाहिए तभी उपासना सफल है। परमेश्वर को उपासना हेतु कहीं खोजने की आवश्यकता नहीं है। उसे अपने मन में खोजना है।

भगवान सर्वत्र सर्वदा विद्यमान है किन्तु दिखलाई नहीं देता क्योंकि हमने अपने मन को उसके लिए तैयार नहीं किया है। हम अपनी आत्मा में उसे देखने का प्रयत्न करें। मन से नमन करें। क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं बनता कि ऐसे न्यायकारी परमात्मा को धन्यवाद दें उसकी दयालुता के लिये हमें प्रातः सांय उसी की उपासना करनी चाहिए व स्मरण व चिंतन कर उसका धन्यवाद करना चाहिए। मानव जीवन का उद्देश्य ही है मोक्ष अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति जो उसी परमात्मा के सानिध्य में जाकर ही प्राप्त की जा सकती है जिसके लिए शुद्ध, पवित्र हृदय से उपासना करनी आवश्यक है।

OO फोन : 9871798221

ओ३म्
विश्वानि देव सवितः

गतांक से आगे...

पिछले अंक से ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना के मंत्रों की सरल पूर्ण व्याख्या वैदिक विद्वान स्व. प्रो. उमाकान्त उपाध्याय द्वारा लिखित आपकी सेवा में प्रस्तुत की जा रही है, मनन चिन्तन कर जीवन सफल करें।

- प्रबंध संपादक

प्रो. उमाकान्त उपाध्याय

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' और 'उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्व दर्शिनः' ये सभी विचार अब प्रायः पुस्तकस्थ, पिछली सीट पर रिकार्ड की वस्तु बनते जा रहे हैं। चिंताएं बढ़ रही हैं। मनोविकार, हृदयरोग, स्नायुरोग, मस्तिष्क की निर्बलताएं सभी बढ़ रही हैं।

यह सब दृष्ट ज्ञान, दुरित मन का ही तो निश्चित परिणाम है। अतः प्रार्थना करते हैं 'विश्वानि देव सवितः दुरितानि परासुव'- सभी दुष्ट ज्ञान से दूर रहने की प्रेरणा प्राप्त हो। प्रभु कृपापूर्वक ऐसी प्रेरणा करें कि हम दुष्ट ग्रंथ, दुष्ट साहित्य से पृथक् बने रहें। हम दुष्ट साहित्य से बचें किंतु सत्साहित्य, सुमार्ग में प्रेरक साहित्य, स्वस्थ चिंतन, आशावादी, सदाचार नियमानुवर्तिता के प्रेरक साहित्य के सम्पर्क में अवश्य रहें। दुः+इत= दुष्टगमन, बुरी जगहों पर न जाने की प्रेरणा मिलती रहे। जुए, ताश, चौपड़ के अड्डे, सिनेमाघर पर अड्डा मारने की आदत सब दुष्टगमन है।

दुष्ट प्राप्ति भी दुरित है। गांजा, भांग, चरस, शराब की प्राप्ति। खेल में जीता तो शराब पीने का कप पुरस्कार में मिला। होली, दीपावली, नववर्ष आया और किसी ने शराब पीने का सेट भेंट में दे दिया। दुष्ट गमन और दुष्ट प्राप्ति की जगहों या वस्तुओं पर अनचाहे, अनिष्टकारी, आकर्षण लगाव होना भी सम्भव है। न जाने किस जन्म जन्मांतर के संस्कार प्रबल हो उठें। कीचड़ धोने की अपेक्षा उसे न छूना ही उत्तम है- 'प्रक्षालाद्धि पंकस्य दुरादस्पर्शनं वरम्।' किंतु कभी-कभी बैठे-बिठाये अनचाहे भी केर-बेर का संग हो जाता है।

'कहु रहीम कैसे निभे, केर-बेर को संग। या डोले रस आपने, उनके फाटत अंग।'

केले के प्यारे, चिकने, हरे पत्तों को बेर का संग मिल गया। बेर के पत्ते-पत्ते में कांटे। बेर को केलों से कोई बैर नहीं है। किंतु हवा के झोके से आनंद में लहराती बेर की टहनियां केले के पत्तों को अनेकों जगहों से चीर फाड़ देती हैं। किसी का कोई दोष नहीं, हमें स्वयं ही बचकर रहना उचित है। प्रभु प्रेरणा करें हम बचे रहें।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने पुष्पवाटिका में श्रीराम के मुंह से कहलवाया है- 'मानहु मदन दुन्दुभी दीन्हीं, मनसा विश्व विजय कर लीन्हीं।' यह भक्त शिरोमणि तुलसीदास और उनके अराध्य देव श्रीराम का प्रसंग है फिर 'अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार' के वक्ता बिहारी और उनकी शृंगारी मंडली के लोगों को तो प्रभु ही बचावें। वस्तुतः 'कन्दर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः।' यहां तो एक ही मार्ग है- प्रभो! दुरितानि परासुव! जगदीश्वर! अंतःकरण में विराजे हुए प्रेरणा करो। अग्ने! नय सुपथा।

दुरित से बचने का एक सरल व्यावहारिक मार्ग है-(१) सद् ग्रंथों से नियमित सम्पर्क (२) सत्संग में नियमित जाना (३) साधु संत सज्जन चरित्रवान लोगों का संग-साथ करना।

एक संस्मरण याद आ रहा है।

'कहु रहीम कैसे निभे, केर-बेर को संग। या डोले रस आपने, उनके फाटत अंग।' केले के प्यारे, चिकने, हरे पत्तों को बेर का संग मिल गया। बेर के पत्ते-पत्ते में कांटे। बेर को केलों से कोई बैर नहीं है। कितु हवा के झोके से आनंद में लहराती बेर की टहनयां केले के पत्तों को अनेकों जगहों से चीर फाड़ देती हैं। किसी का कोई दोष नहीं, हमें स्वयं ही बचकर रहना उचित है। प्रभु प्रेरणा करें हम बचे रहें। गोस्वामी तुलसीदास जी ने पुष्पवाटिका में श्रीराम के मुंह से कहलवाया है- 'मानहु मदन दुन्दुभी दीन्हीं, मनसा विश्व विजय कर लीन्हीं।' यह भक्त शिरोमणि तुलसीदास और उनके अराध्य देव श्रीराम का प्रसंग है फिर 'अमिय हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार' के वक्ता बिहारी और उनकी शृंगारी मंडली के लोगों को तो प्रचु ही बचावें। वस्तुतः 'कन्दर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः।' यहां तो एक ही मार्ग है- प्रभो! दुरितानि परासुव! जगदीश्वर! अंतःकरण में विराजे हुए प्रेरणा करो। अग्ने! नय सुपथा। दुरित से बचने का एक सरल व्यावहारिक मार्ग है-(1) सद् ग्रंथों से नियमित सम्पर्क (2) सत्संग में नियमित जाना (3) साधु संत सज्जन चरित्रवान लोगों का संग-साथ करना।

दिल्ली में एक लाला रघुमल हुआ करते थे। दिल्ली में उनके कई मकान थे। सब भाड़े पर उठे हुए थे। उनका कोई सत्संगी मित्र आया और उन्हें आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में चलने की प्रेरणा करने लगा। स्वामी श्रद्धानंद तब सम्भवत:महात्मा मुंशीराम थे और गुरुकुल उस समय गंगा के तट पर, पुण्य भूमि में खुला ही था। शेरों बाघों से भरे भयानक स्थान पर गुरुकुल चलाने वाले को देखने की उत्कण्ठा, प्रभु प्रेरणा, वे सत्संग में चले गये। महात्मा मुंशीराम पाप की कमाही न करने का उपदेश दे रहे थे। मुंशीराम जी ने कहा, साधु की बात का भरोसा करो, पाप का धन बंद करो, तुम्हारी आय, तुम्हारा धन घटेगा नहीं, बढ़ेगा। तीर निशाने पर सध गया। लाला रघुमल के मकानों में वेश्याओं के कोठे चलते थे। इस पाप की कमाई का पैसा भाड़े के रूप में लालाजी को भी मिलता था। लालाजी ने घर आकर सभी वेश्याओं को हटा दिया और आदेश दे दिया कि कभी किसी पाप कर्म के लिए मकान नहीं दिये जाएंगे।

संस्मरण लिखने वाले बताते हैं कि यह घटना बयां करते-करते समय लाल रघुमल भावुक हो उठे, आंखें चूने लगीं। उन्होंने कहा कि महात्मा की कृपा से इतने रुपये आ रहे हैं कि खर्च करने को जगह नहीं। उन्हीं के दान का रघुमल चैरिटी ट्रस्ट लाखों लाख का दान करता है, अनेकानेक पुण्य कार्यों में धन लगाता है।

'तुलसी पंछी के पये, घटे न सरिता नीर।
दान किये धन का घटै, जौ सहाय रघुवीर।'

यह प्रेरणा, सत्संग, सज्जन संग, सद्ग्रंथों के स्वाध्याय से ही सम्भव है। एक रघुमल नहीं, हजारों हजार व्यक्तियों का कल्याण इस मार्ग से होता रहा है। याचना करनी चाहिए, ईमानदारी से प्रभु प्रेरणा के लिए प्रार्थना करनी चाहिए, 'प्रभु कृपा करो- दुरितानि परासुव।'

स्वामीजी ने दुरित का अर्थ दुर्गुण, दुर्व्यसन भी किया है। युधिष्ठिर का जुआ का व्यसन कुलघाती ही नहीं, राष्ट्रघाती, जातिघाती प्रमाणित हुआ। शराब पीना भी एक दुर्गुण दुर्व्यसन है। यदुवंशियों का कुलघाती मुसल युद्ध मदिरापान का ही तो दुष्परिणाम था। योगेश्वर, गीता-गायक, भगवान् श्रीकृष्ण जैसा नेता पाकर भी युधिष्ठर द्यूत के सत्यानाशी व्यसनके फलस्वरूप स्वयं तो डूबे ही, देश, जाति राष्ट्र को भी ले डूबे। मदिरा व्यसन यदुवंशियों के सर्वथा विनाश का कारण बना। अत: एक ही उपाय है 'जगदीश्वर, दुर्गुण, दुर्व्यसन से दूर रहने की प्रेरणा करते रहें, ताकि हम भद्र के पात्र बन सकें।'

प्रार्थना है 'विश्वानि दुरितानि परासुव'। एक दो दुरित नहीं, सभी विश्वानि, सम्पूर्ण दुर्गुणों, दुर्व्यसनों को दूर कीजिए। एक भी दुर्गुण, दुर्व्यसन सम्पूर्ण जीवन को नष्ट करने के लिए पर्याप्त हो जाता है-

'पंचेन्द्रिस्य मर्तस्य छिद्रंचेदेकमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा, दृतेः यात्रादिवोदकम्।।'

मरणधर्मा मनुष्य की पांचों इद्रियां पांच छिद्र हैं। एक भी इद्रिय में दुर्बलता आयी कि पानी के बर्तन में छिद्र की तरह वह इन्द्रिय की निर्बलता सब कुछ नष्ट कर देती है। अतः सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन दूर होने की प्रार्थना है। एक और नीतिवचन ध्यान रखने योग्य है-

'कुरंग मातंग पतंग भृंग, मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च। एकः प्रमादी स कथन्न हन्यते, यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च।'

मृग कान की निर्बलता का शिकार बनता है, हाथी स्पर्श का, पतंग रूप का, भौरा गंध का, मीन रसना का शिकार बनता है। ये पांचों प्राणी एक-एक इन्द्रिय की निर्बलता के कारण अपने अपने जीवन से हाथ धो लेते हैं और मनुष्य तो ऐसा प्रमादी प्राणी है कि वह एक साथ ही पांचों इंद्रियों की दुर्बलता का शिकार बन जाता है। फिर उसके विनाश में क्या देर हो सकती है! अतः सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन से पृथक् रहने की प्रार्थना है।

प्रथम प्रार्थना क्या है- 'सभी दुर्गुण, दुर्व्यसन और दु:खों को दूर करने की' फिर द्वितीय प्रार्थना है- 'कल्याण कारक गुण कर्म और स्वभाव को प्राप्त करने की।' जब तक दुर्गुण आदि बुराइयां दूर न हों, तब तक सद्गुणों को ग्रहण करने की पात्रता नहीं आती। गोबर-कूड़ा-कचरा भरे बर्तन में शुद्ध दूध दही क्यों कर रखा जा सकता है? अतः प्रथम दुर्गुण दूर हों। फिर सद्गुण आवें।

यद् भद्रं तन्न आसुव- जो कल्याणकारक है वह सब हमको प्राप्त कीजिए। अर्थात् हे प्रभो! कृपा करके ऐसी प्रेरणा कीजिए कि हम कल्याणकारक गुण कर्म कर्म स्वभाव आदि को प्राप्त करें।

आसुव 'षू प्रेरणे' का रूप है। प्रभु हाथ-पैर धारी होकर हमारा कोई काम नहीं करते। प्रभु की ओर से हमारे कामों में प्रेरणा मिलती है। जब हम कोई अच्छा, आदर्श, परोपकारी कार्य करते हैं तो हमारे मन में उत्साह, आनंद, उल्लास होता है। और भी अच्छे काम करने की प्रेरणा हृदय में जगती है। अच्छाई से अच्छाई को प्रेरणा मिलती है। यह प्रेरणा, उत्साह परमेश्वर की ओर से है। यही तो यद् भद्रं तन्न आसुव जैसी प्रार्थनाओं का फलितार्थ है।

प्रकाश की तरह सारी की सारी अच्छाइयां एक साथ नहीं आ जातीं। हम स्विच को दबाते हैं, इधर स्विच आन हुई और उधर सम्पूर्ण हाल में एक साथ प्रकाश आ जाता है। सारा कमरा एक साथ युगपत् आलोकित हो उठता है। अच्छाइयों की, कल्याण मार्ग की, उपलब्धि एक साथ ही नहीं हो जाती। अच्छाइयां एक-एक करके आती हैं। कल्याण पथ एक-एक करके प्रशस्त होता है।

ज्योतिष वेदांग क्यों?

आचार्य वेदव्रत मीमांसक, आर्ष गुरुकुल आंध्रप्रदेश

वैदिकों ऋषियों की यह मान्यता है कि प्राणिमात्र के सुख के लिए आवश्यक ज्ञान को सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने वेदों के रूप में मानवों को दिया। एक समय था कि जब सारे संसार के लोग वेदों को मानते थे, उन्हीं को पढ़ते-पढ़ाते थे। मध्यकाल में भारत में वेदों का पढ़ना-पढ़ाना बहुत मंद हुआ। सारे संसार में नाममात्र ही रह गया। महर्षि दयानंद सरस्वती परिश्रम से भारत में वेदों को पढ़ने-पढ़ाने की प्रवृत्ति बढ़ गई। वेदों का अर्थ विज्ञानयुक्त होने के कारण संसार के देशों में पुनः उनके प्रति श्रद्धा बढ़ रही है। आकर्षण बढ़ रहा है। इसका परिणाम यह हुआ कि विदेशों में अब न केवल वेदों का पठन-पाठन ही चल रहा है अपितु उन पर अनुसंधान भी हो रहा है। यह मानव जाति की उन्नति का शुभ संकेत है।

वेदज्ञ पूर्वज ऋषि, महर्षि मुनि व विद्वानों ने वेदार्थ को जानने के लिए वेदांगों का निर्माण किया। वे शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद, कल्प कहलाते हैं। वेदांगों के विषय में यह लिखा है कि-

छंदः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥ शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् सांगमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

छंद: शास्त्र वेद भगवान के पैर के सदृश, कल्प (श्रौत गृह्य धर्म) सूत्र हाथ के समान, ज्योतिः शास्त्र नेत्रतुल्य, निरुक्त श्रोत्रवत्, शिक्षा शास्त्र नासिका स्थानीय और व्याकरणशास्त्र मुख तुल्य है। इसलिए इन अङ्गों सहित वेद को पढ़कर ही विद्वान ब्रह्मलोक अर्थात् वेदस्य विद्या को जानने में निपुण होता है, वेद वेत्ताओं में सम्मानित होता है, परब्रह्म को जानने में समर्थ होता है, ब्रह्मवेत्ताओं में सम्मानित होता है।

सायणाचार्य ने ऋग्वेद भाष्य भूमिका में वेदांगों के विषय में लिखा है- **'अति गंभीरस्य वेदस्यार्थ मबोधयितुं शिक्षादीनि षडङ्गानि प्रवृत्तानि।'** अतिगूढ़ अर्थों से युक्त वेदों के अर्थ को बोधित करने के लिए शिक्षादि छः अंग प्रवृत्त हैं। आगे चलकर उन्होंने उसी में ज्योतिष के प्रयोजन को प्रकट करते हुए लिखा है कि 'ज्योतिषस्य प्रयोजनम् तास्मिन्नेव ग्रंथे- विहितम्- 'यज्ञकलार्थ सिद्धये' इति।' अर्थात् ज्योतिष शास्त्र 'यज्ञकाल की सिद्धि के लिए' है ऐसा उसी ग्रंथ में लिखा है। आगे लिखा है कि वर्ष मे, ऋतु में, मास में, पक्ष में, तिथि में, प्रातः सायं आदि काल में, नक्षत्रों में- (अमुक-अमुक नक्षत्रों में) यागादि कर्मों की विधियां हैं। उपसंहार करते हुए लिखा है कि **'अतः कालविशेषानवगयितुं ज्योतिषमुप युज्यते।'** अर्थात् कालविशेषों को बोधित कराने के लिए ज्योतिष का उपयोग होता है।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने ज्योतिष के स्वरूप एवं प्रयोजनों को बतलाते हुए लिखा है कि- 'दो वर्ष में ज्योतिष शास्त्र, सूर्य सिद्धांत जिसमें बीजगणित, अंक (रेखागणित सं. वि.) भूगोल खगोल और भूगर्भ विद्या है इसको यथावत् सीखें। स.प्र.३ समु।

'पणिनि पतंजलि यास्कादिमहर्षि भिश्च वेदव्याख्यानानि वेदांगाख्यानि कृतानि।' ऋ.भा.भू. भाष्यकरण.॥ पाणिनि पतंजलि यास्कादि महर्षियों के द्वारा वेदांग नामक वेद व्याख्यान बनाए गए।

महर्षि दयानंद के अनुसार ज्योतिष आदि वेदांग वेदों के व्याख्यान हैं, और वे सूर्यसिद्धांत आदि हैं। उनमें बीजगणित, अंकगणित, रेखागणित, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है। आगे महर्षि लिखते हैं कि 'परंतु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रंथ हैं उनको झूठ समझ के कभी न पढ़े और न पढ़ावें।'

वर्तमान में याजुषज्योतिष नाम से दो लघु ग्रंथ मिलते हैं। संभवतः वे ज्योतिष नाम से उपलब्ध ग्रंथों में सबसे पुराने हों। वासिष्ठ सिद्धांत नामक एक लघुकाय ग्रंथ मिलता है वह कब बना कुछ पता नहीं चलता। इसके पश्चात् जिसको ज्योतिष कहना चाहिए ऐसे ग्रंथों में सर्वप्रथम ग्रंथ आर्यभहीय आता है। इसके पश्चात् ब्रह्मगुप्त कृत ब्रह्मस्फुट

महर्षि दयानंद के अनुसार ज्योतिष आदि वेदांग वेदों के व्याख्यान हैं, और वे सूर्यसिद्धांत आदि हैं। उनमें बीजगणित, अंकगणित, रेखागणित, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है। आगे महर्षि लिखते हैं कि 'परंतु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रंथ हैं उनको झूठ समझ के कभी न पढ़े और पढ़ावें।' वर्तमान में याजुषज्योतिष नाम से दो लघु ग्रंथ मिलते हैं। संभवतः वे ज्योतिष नाम से उपलब्ध ग्रंथों में सबसे पुराने हों। वासिष्ठ सिद्धांत नामक एक लघुकाय ग्रंथ मिलता है वह कब बना कुछ पता नहीं चलता। इसके पश्चात् जिसको ज्योतिष कहना चाहिए ऐसे ग्रंथों मे सर्वप्रथम ग्रंथ आर्यभहीय आता है। इसके पश्चात् ब्रह्मगुप्त कृत ब्रह्मस्फुट सिद्धांत, वराहमिहिर का करणग्रंथ पंचसिद्धांतिका, लल्लाचार्य का शिष्यधीवृद्दिद, वटेश्वराचार्य का वटेश्वर सिद्धांत, मयासुर का सूर्य सिद्धांत, आचार्य श्रीपति का सिद्धांतशेखर, आचार्य भास्कर का सिद्धांतशिरोमणि आदि अनेक ग्रंथ आते हैं।

सिद्धांत, वराहमिहिर का करणग्रंथ पंचसिद्धांतिका, लल्लाचार्य का शिष्यधीवृद्धिद, वटेश्वराचार्य का वटेश्वर सिद्धांत, मयासुर का सूर्य सिद्धांत, आचार्य श्रीपति का सिद्धांतशेखर, आचार्य भास्कर का सिद्धांतशिरोमणि आदि अनेक ग्रंथ आते हैं।

शिक्षा शास्त्रों में पाणिनीय नाम से उपलब्ध श्लोकों में ज्योतिष का लक्षण 'ज्योतिषामयनं चक्षु:' किया है जिसका सीधा अर्थ ज्योतियों का अयन् ज्योतिष शास्त्र है। यह वेदभगवान् का नेत्र स्थानीय है। यजुष् ज्योतिष में भी ठीक इसी प्रकार ज्योतिषामयन को ज्योतिष का लक्षण माना है न कि यज्ञकाल की सिद्धि को। यही इसके अंत में फल श्रुति के रूप में कहा है कि-

सोमसूर्यस्तृचरितं विद्वान् वेदविमश्नुते।
सोम सूर्यस्तृचरितं लोकं लोके च सन्तातम्। 43

जो विद्वान चन्द्र सूर्य नक्षत्र के चरितं गति को जानता है वह चंद्र सूर्य नक्षत्र लोक को और लोक में संतान को प्राप्त करता है। इस फलश्रुति में यज्ञकाल प्रयोजन की सिद्धि का नाम भी नहीं है।

सूर्य सिद्धांत के अनुसार वेदांग ग्रममखिलं ज्योतिषां गति कारणम् वेदांगों में उत्तम ज्योतियों की गतियों के कारण रूप ज्ञान, पुण्य रहस्यपूर्ण और श्रेष्ठ शास्त्र को जानने की इच्छा वाले मय ने सूर्य की आराधना करता हुआ कठिन तप किया। तब सूर्य ने 'कालश्रयं ज्ञानं ज्योतिषां चरितं महत्' काल का आश्रयभूत ज्योतियों के महान चरित्र का उपदेश दिया। इस उपक्रम के अनुसार सूर्य से ज्योतियों का चरित्र ही पूछा गया और उसके द्वारा ज्योतियों का चरित्र ही बतलाया गया। यहां यज्ञकाल का प्रसंग ही नहीं। देखिए शास्त्रांत में फलश्रुति को- **'ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्वतः। ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मबान्नरः॥**

सूर्य सि. 13/23॥

जो विद्वान चन्द्र सूर्य नक्षत्र के चरितं गति को जानता है वह चंद्र सूर्य नक्षत्र लोक को और लोक में संतान को प्राप्त करता है। इस फलश्रुति में यज्ञकाल प्रयोजन की सिद्धि का नाम भी नहीं है। सूर्य सिद्धांत के अनुसार वेदांग ग्रममखिलं ज्योतिषां गति कारणम् वेदांगों में उत्तम ज्योतियों की गतियों के कारण रूप ज्ञान, पुण्य रहस्यपूर्ण और श्रेष्ठ शास्त्र को जानने की इच्छा वाले मय ने सूर्य की आराधना करता हुआ कठिन तप किया। तब सूर्य ने 'कालश्रयं ज्ञानं ज्योतिषां चरितं महत्' काल का आश्रयभूत ज्योतियों के महान चरित्र का उपदेश दिया। इस उपक्रम के अनुसार सूर्य से ज्योतियों का चरित्र ही पूछा गया और उसके द्वारा ज्योतियों का चरित्र ही बतलाया गया। यहां यज्ञकाल का प्रसंग ही नहीं।

ग्रह नक्षत्रों की चाल एवं गोल के तत्व को जानने वाला पर्याय से ग्रहों के लोक को प्राप्त होता है।

दिव्यं चार्क्षं ग्रहाणां च दशितं ज्ञानमुत्तमम्।
विज्ञायार्कादिलोकस्य स्थानं प्राप्नोति तादृशम्॥

सू.सि. मानाध्याक्षा- 23॥

मैंने ग्रह नक्षत्रादि आकाशस्थ पदार्थों का उत्तम ज्ञान बतलाया है उसको जानकर सूर्यादि लोकों में शाश्वत स्थान को प्राप्त होता है। सूर्य सिद्धांत के इन दोनों अध्यायों के अंत में केवल ज्योतिषियों की चाल की फलश्रुति का कथन है। उन्हीं लोकों को प्राप्त होने का कथन है। किंतु 'वेद यज्ञ के लिए प्रवृत्त हुए हैं और वे यज्ञ कालानुसार विहित हैं। इस शास्त्र से यज्ञकाल की सिद्धि होती है।' ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है।

इन कुछ प्रबल प्रमाणों से यह सुतरां सिद्ध हो गया कि ज्योतिष सूर्यादि नक्षत्रों, पृथिव्यादि ग्रहों, चंद्रादि उपग्रहों की स्थिति गति को कहने वाला शास्त्र है। अब यह प्रश्न उठता है कि ज्योतिष यज्ञ के लिए अभीष्ट कालों का विधान करता है ऐसा क्यों माना जाता है? इसका समाधान यह है कि मनु महाराज ने-

अग्निवायुरविभ्यस्तु भयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थ मृग्ययजुस्सामलक्षणम्॥

मनु 1/23॥ ऐसा लिखा

इसका अर्थ- परमात्मा ने ऋग्यजु: साम नाम वाले सनातन तीन वेदों को अग्नि वायु रवियों से दोहन करके प्रकट किया। यह यज्ञ शब्द ध्यातव्य है।

यज्ञ शब्द के कई अर्थ हैं। यज धातु का अर्थ देवपूजा, संगतिकरण, दान है। इसी के आधार पर ब्रह्मयज्ञ का अर्थ वेद का पढ़ना-पढ़ाना, परमेश्वर का चिंतन यज्ञ कहलाता है। क्योंकि ये तीनों कर्म वेद एवं ईश्वर का पूजन ही है। वेद एवं ईश्वर का पूजन, सत्कार, ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान करना, वेद का पढ़ना-पढ़ाना= देन, लेना होता है अत: ये तीनों कर्म यज्ञ कहलाते हैं।

ईश्वर के द्वारा निर्मित यह सृष्टि भी यज्ञ है। इस सृष्टि में नक्षत्र (सूर्य) ग्रह, उपग्रहादि विद्यमान हैं। उनका तथा उनके निर्माता पालक एवं प्रलयकर्ता का विस्तृत ज्ञान वेदों में विद्यमान है। वेद ईश्वरीय सिद्धांत है और सृष्टि उसकी प्रयोगशाला है। जैसा सृष्टि, संसार, जगत, ज्ञान विज्ञानमय है उसी प्रकार वेद ज्ञान विज्ञानमय है।

जिस प्रकार वेद के अध्ययन से सृष्टिकर्ता का ज्ञान होता है उसी प्रकार सृष्टि के अध्ययन से सृष्टिकर्ता का ज्ञान होता है। वेद ईश्वर का संविधान है जबकि सृष्टि इसका देश है। जिस प्रकार किसी पदार्थ के संविधान के जानने से उस पदार्थ से यथावत् उपकार लेना संभव है उसी प्रकार वेदरूपी संविधान के जानने से संसार से यथावत् उपकार लेना संभव है।

OO

वेद और श्राद्ध तर्पण

संकलनकर्ता : मृदुला अग्रवाल

हमारे दैनिक नित्य कर्मों में पंच महायज्ञ संपादित करने का आवश्यक विधान है। इन्हीं में पितृयज्ञ-श्राद्ध-तर्पण का भी विधान है। संयोगवश 'पितर' शब्द से कुछ लोगों ने मृतक पितर मान लिए हैं। अत: उन्होंने उन्हीं मृतकों के संतोषार्थ ही श्राद्ध-तर्पण करने का भी विधान बना लिया है, लेकिन अपने वेदादि आर्ष ग्रंथों में इसका कहीं विधान नहीं है। वेद में लिखा है 'वायुरनिलममृतमथेदं, भस्मांतं शरीरम्॥ (यजु. 40/15) पितर: ऋतव: पितर: अर्थात ऋतु पिता है (कौ. 517) अग्नि में शरीर को भस्मीभूत करने के पश्चात उसके संबंधियों के लिए जीवन के प्रति और कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। इस विवेचन के लिए सर्वप्रथम पितर शब्द का विश्लेषण आवश्यक है।

पितरौ- माता च पिता च पितरौ। (अष्टा. 1/2/70), पितर: पिता पाता पालयिता वा। (निरुक्त-4/21), पितरौ- द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बंधुर्मे माता पृथ्वी महीयम् (ऋग्वेद- 1/164/33), पितर: स्वदुषंसद: पितरो व योधा: कृच्छेश्रित: शक्तिवन्तो गभीरा:। चित्रसेना इषुबला अमृध्रा: सतोवीरा उरवो व्रात साहा:। (ऋग्वेद 6/75/9)।

यहां सैनिक के लिए पितर शब्द व्यवहृत है। पितर: अरूरुचदुषस: पृश्निरग्रिय उक्षा/बिभर्ति भुवनानि वाजयु:। मायाविन ममिरे अस्य मायया नृधक्षास: पितरो गर्भसा दधु:। (ऋ.09/83/3)- यहां पितर शब्द सूर्य-रश्मियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

वसून् वदन्ति तु पितृन् रुद्रांश्चैव पितामहान्। प्रपितामहांस्थादित्या द्यु तिरेषा सनातनी॥ (मनु. 3/285)

यहां पितर शब्द अपने माता, पिता, पितामह आदि के अर्थ में व्यवहृत है।

पितृलोक: तृतीये वा इतो लोके पितर: (तै.1/3/10/5)। यहां द्यु लोक के लिए पितर शब्द प्रयुक्त है। पितृलोक- पितृलोक सोम: (कौ. 16/5)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो गया है कि पितर शब्द का अर्थ मृत माता, पिता, पितामह आदि नहीं है। मृत्यु के पश्चात जीव की गति के बारे में वेद कहता है- 'अपेत वीत वि च सर्पतातोस्मा एत पितरो लोक मक्रन। अहोभिरभ्दिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥ (ऋ. 10/14/9) (मृत्यु के पश्चात जीव सूर्य की रश्मियों को प्राप्त होकर पुन: किरणों के द्वारा अंतरिक्ष, द्यु लोक में भ्रमण करके कालांतर के पश्चात पुन: उषा एवं रात्रियों में विराम करे पुन: जन्म धारण करता है)। 'उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनां अनु। तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुद्येह भद्रम्॥ (ऋ. 10/14/12) (दिवा रात्रि, आयुरूप जीवन काल के दूत बनकर बार-बार सूर्य का दर्शन कराते हुए जीव को अंतिम काल तक के ले जाकर पुन: जन्म धारण कराते हैं)। प्रश्नोपनिषद् में पिप्पलाद मुनि से कात्यायन के द्वारा प्रश्न किए जाने पर दिव्य तत्वों को भी पितर संज्ञा दी गई है। प्रथम पितर: सूर्य-चंद्रमा (उष्णता एवं तरलता का सम्मिश्रण)।

द्वितीय पितर: संवत्सर-उत्तरायण एवं दक्षिणायन। तृतीय पितर: शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष। चतुर्थ पितर: दिवा रात्रि। पंचम पितर: रज एवं वीर्य। माता च पिता च पितरौ। प्रजापति का आध्यात्मिक तत्व प्राण है और शारीरिक तत्व रयि है। सर्वप्रथम प्रजापति ने प्राण एवं रयि का एक जोड़ा उत्पन्न किया। इसी जोड़े के द्वारा संसार की उत्पत्ति संभव हुई।

पितरौ- माता च पिता च पितरौ। (अष्टा. 1/2/70), पितरः पिता पाता पालयिता वा। (निरुक्त-4/21), पितरौ- द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बंधुर्मे माता पृथ्वी महीयम् (ऋग्वेद- 1/164/33), पितरः स्वदुषंसदः पितरो व योधाः कृच्छेश्रितः शक्तिवन्तो गभीराः। चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रात साहाः। (ऋग्वेद 6/75/9)। यहां सैनिक के लिए पितर शब्द व्यवहृत है। पितरः अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा/बिभर्ति भुवनानि वाजयुः। मायाविन ममिरे अस्य मायया नृधक्षासः पितरो गर्भसा दधुः। (ऋ.09/83/3)- यहां पितर शब्द सूर्य-रश्मियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। वसून् वदन्ति तु पितृन् रुद्रांश्चैव पितामहान्। प्रतितामहांस्थादित्या द्यु तिरेषा सनातनी॥ (मनु. 3/285) यहां पितर शब्द अपने माता, पिता, पितामह आदि के अर्थ में व्यवहृत है। पितृलोकः तृतीये वा इतो लोके पितरः (तै.1/3/10/5)। यहां द्यु लोक के लिए पितर शब्द प्रयुक्त है। पितृलोक- पितृलोक सोमः (कौ. 16/5) उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो गया है कि पितर शब्द का अर्थ मृत माता, पिता, पितामह आदि नहीं है। मृत्यु के पश्चात जीव की गति के बारे में वेद कहता है- 'अपेत वीत वि च सर्पतातोस्मा एत पितरो लोक मक्रन। अहोभिरभ्दिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥ (मृत्यु के पश्चात जीव सूर्य की रश्मियों को प्राप्त होकर पुनः किरणों के द्वारा अंतरिक्ष, द्यु लोक में भ्रमण करके कालांतर के पश्चात पुनः उषा एवं रात्रियों में विराम करे पुनः जन्म धारण करता है)।

सर्वप्रथम पितर सूर्य जगत् का प्राण है, उसकी किरणें प्राणरक्षक हैं, निरोगता प्रदान करने वाली हैं, एवं अग्नि स्वरूप होकर पाचन क्रिया का नियंत्रण कर प्राणों की सहायता करती हैं।

चंद्रमा विकसित होकर रात्रि प्रदान करता है। इस प्रकार सूर्य और चंद्रमा का जोड़ा उत्पत्ति और विनाश का कार्य करता है। द्वितीय पितर संवत्सर का जन्म भी सूर्य-चंद्रमा की परिक्रमा में तिथि रूप मे होता है। यहां उत्तरीय पथ नर एवं दक्षिण पथ नारी रूप है। इसी के अंतर्गत जीव जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। वेद विहित कार्य करने वाले जीव संवत्सर- द्वारा उत्तरायण मार्ग से होकर मुक्ति की ओर एवं सकाम कर्म करने वाले दक्षिणायन-मार्गी जीव शारीरिक भोगों को प्राप्त होकर पुनः आवागमन को प्राप्त होते रहते हैं। तीसरे पितर शुक्ल व कृष्ण पक्ष हैं एवं चौथे पितर दिन एवं रात्रि हैं। इन्हीं में जीव सारे कार्य संपादित करते हैं एवं चौथे पितर दिन एवं रात्रि हैं। इन्हीं में जीव सारे कार्य संपादित करते हैं और पुनः उत्पन्न होते हैं।

पंचम पितर रज एवं वीर्य है, जिसमें जीव पुनः जन्म ग्रहण करता है। यहां रज एवं वीर्य भी पितर हैं।

भौतिक पितरों को वेद ने तीन भागों में विक्त किया है-

त्रयो वै पितरः सोमवन्तः बर्हिषदः अग्निष्वात्ताः। सोमवताम्‌ बर्हिषदाम्‌ अग्निष्वात्ताम्‌॥ (शतपथ. 5/5//4/28)

सोमवान्- तद्ये सोमेनेजानाः ते पितरः सोमवंतः। (सोम से यज्ञ संपादन करने वाले)। बर्हिषद- अथ ये दत्तेन पक्केन लोके जयन्ति ते पितरो बर्हिषदः। (पाक यज्ञ करने वाले)।

अग्निष्वात-अथ ये ततो नान्यत रुचनयानग्निरेव दहन् स्वदयतितेपितरोग्निष्वात्ताः। (दोनों प्रकार के यज्ञ संपादन करने वाले) सोमप्रयाजा पितरः ये वै यज्वानः ते पितरो बर्हिषदः। ये वा यज्वानो गृहमेधिनः ते पितरोग्निष्वात्ताः।

(तै. 1/9/9/6)

अब इनके बारे में योग कहता है- आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानौः। अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोधिब्रु वन्तु तेवन्त्वस्मान्। (यजुर्वेद 19/58) (सोम्यास) सोम के समान शमदम युक्त (अग्निषषवात्ताः) अग्नि विद्या विशेषज्ञ (नः पितरः) अन्न एवं विद्यादि से हमारा पालन करने वाले (देवयानैः पथिभिः) देवताओं के मार्ग से (आयुन्तु) आवें। (तेस्मिन यज्ञे) वे हमारे इस अध्ययन रूप यज्ञ में (स्वधया मदन्तः) अन्न एवं विद्या द्वारा आनंद प्राप्ति के लिए (अधिब्रुवन्तु) हमको उपदेश करें (अवन्तु) एवं हमारी रक्षा करें।) उपर्युक्त मंत्र में अधिब्रुवन्तु शब्द जीवित पितरों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। मृतक पितरों के लिए आकर उपदेश देना किस प्रकार संभव है।

धूम्र बभ्रु नीकाशाः पितृणां सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः। (यजुर्वेद 24/18)।

श्राद्ध दैनिक कर्म है, जिसे प्रतिदिन किया जाना चाहिए

श्रीमती सरोज आर्या, जयपुर

श्राद्ध शब्द सुनते ही जनसाधारण के मन में आश्विन् मास के कृष्ण पक्ष के पंद्रह दिनों में से किसी एक दिन किए जाने वाले मृत पूर्वजों के निमित्त पिण्डदान की ओर जाता है। पुराणों के अनुसार पितरों के निमित्त भाद्रपद शुक्ल पूर्णिमा से आश्विन् कृष्ण अमावस्या तक के सोलन दिनों में उनके प्रति श्रद्धा स्वरूप तर्पण भोजन करा और दान-दक्षिणा देकर उनकी अत्मा को प्रसन्न करने के लिए श्राद्ध किया जाता है।

पुराणों के अनुसार श्राद्ध कब और कैसे करना चाहिए : पुराणों के अनुसार जिस तिथि को माता-पिता आदि का देहांत हुआ हो उसी तिथि को श्राद्ध करना चाहिए, क्योंकि इस अवधि में पितृगण अपने परिजनों के द्वार पर विविधरूपों में मंडराते हैं और तर्पण की कामना करते हैं। अतः पितरों का स्मरण करते हुए पहले गाय, कुत्ता और कौआ का भाग निकालकर उन्हें खिलाएं, फिर एक, पांच या ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। उन्हें अपना सामर्थ्य के अनुसार दान-दक्षिणा देकर विदा करने के पश्चात् श्राद्धकर्ता को भोजन करना चाहिए।

श्राद्ध का फल : पुराणों की मान्यतानुसार जो व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा के साथ अपने पितरों का श्राद्ध करते हैं, वह पितृदोष और पितृऋण से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को जाता है। जो लोग पितृपक्ष में श्राद्ध नहीं करते, उनके पितर असंतुष्ट होकर उन्हें कठिन श्राप देते हैं। अधिकांश लोग मृत पितरों का श्राद्धतर्पण ही करते हैं, जो सर्वथा अवैदिक, अव्यवहारिक एवं अवैज्ञानिक हैं। जीवित अवस्था में तो माता-पिता आदि पितरों की सेवा करते नहीं और उनकी मृत्यु के पश्चात् सामाजिक दिखावे के लिए पिण्डदान, ब्राह्मण भोज आदि करते हैं। किसी कवि ने बहुत सुंदर कहा- जियत मात-पिता से दंगम दंगा। मरे मात-पिता पहुंचाये गंगा।

आश्विन् मास के श्राद्ध की वास्तविकता : प्राचीन काल में वर्षाकाल में आवागमन के साधन अविरुद्ध हो जाने से भ्रमण, व्यापार, युद्धादि कार्य बंद हो जाते थे, तब सब अपने घरों में ही रहते थे। वर्षाकाल पर्यंत वन में रहने वाले संन्यासी, वानप्रस्थी किसी एक स्थान में रुककर चातुर्मास व्यतीत करते थे, इस दौरान यज्ञ, स्वाध्याय और उपदेश का कार्य होता था। साधारणजन उनसे शंका समाधान और मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। इस प्रकार समाज अज्ञानमुक्त होता था। आश्विन् मास का कृष्ण पक्ष वर्षा का अवसान काल होता था, तब उस स्थानमें पधारे हुए विद्वान संन्यासी गणों की विदाई के पूर्व 15 दिन तक गृहस्थ लोग अपने-अपने घरों में क्रम से उनन्हहें आमंत्रित कर भोजन कराते थे। उन्हें दान दक्षिणा देते थे। इस मास की अमावस्या के दिन इनकी विदाई होती थी। अतः इस अमावस्था को पितृ विसर्जनी और पितृ तर्पणी कहा जाता है।

महर्षि निर्वाण दिवस पर कर्त्तव्य पथ पर चलने का संकल्प लें

वेद की शिक्षाओं को अपनाकर ही विश्व को श्रेष्ठ बनाया जा सकता है

स्व. स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती
पूर्व प्रधान, सार्वदेशिक सभा संचालन समिति

ओ तुंग हिमालय श्रृंग तुल्य उज्ज्वल महान् गंभीर परम पावन चरित्र गंगा समान ओ ब्रह्मचर्य साकार, दिव्य जीवन अनूप पाखंड दम्भ के लिए उग्र विद्रोह रूप ओ तेजस्वी, ओ क्रांतिदर्शी ओ सत्यकाम युग पुरुष हमारा युग-युग तक तुमको प्रणाम। *- रामधारी सिंह 'दिनकर'*

ज्योति पर्व दीपावली का महान संदेश है अपने जीवन दीप के प्रकाश द्वारा समस्त मानवता को जगमगा देना और ऐसा करने पर ही अंधकार में पनपने वाले विषमय तत्व विनष्ट होंगे। इसके लिए ज्ञान, प्रकाश, आलोक, ज्योति को अपने जीवन दीप में लाना ही होगा। अंधकार को विनष्ट करने में, अन्यों के जीवन दीपों को प्रज्वलित करने में, पथ भ्रष्टों के पथ प्रदर्शन में तिमिराच्छन्न हृदयों को जगमगाने में यदि अपना दीपक बुझ भी जाये तो यही उसकी सार्थकता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का दीपावली पर्व से गहरा संबंध है। दीपावली के ही दिन महर्षि दयानन्द जी ने अपना भौतिक शरीर छोड़ा था। समूचा आर्य जगत दीपावली के पर्व को ऋषि निर्वाणोत्सव के रूप में मनाता है और इस दिन उनके महत्व योगदान और विशेषताओं को स्मरण किया जाता है उन्हें नम्र श्रद्धाजलि दी जाती है। आर्य समाज के इतिहास में दीपावली का पर्व स्वामी जी का स्मृति पर्व है। ऋषि दयानन्द ने दीपावली के दिन शरीर का त्याग कर संसार को संदेश दिया था, **'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतम् गमयति।'**

महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना अध्यात्म, दर्शन, धर्म, शिक्षा, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व को ध्यान में रखकर दी थी। और इन क्षेत्रों में पनप रही अव्यवस्था, अप संस्कृति, उच्छृंखलता, अवैज्ञानिकता के उन्मूलनार्थ वेदों की ओर लौटने का आह्वान किया था।

हम इस लक्ष्य में कितना सफल हुए हैं महर्षि निर्वाण दिवस के अवसर पर हमें गहन चिंतन करना होगा। ऋषिवर दयानन्द ने जिन मूल्यों का सूत्रपात किया वे वेद पर आधारित हैं। वेद की शिक्षाओं को अपनाकर ही समूचे विश्व को श्रेष्ठ बनाया जा सकता है। स्वामी दयानन्द जी ने इस संसार से विदा लेने के पूर्व अपने भक्तों को अपने पीछे खड़े होने व भवन के दरवाजे, खिड़की खोलने का आदेश दिया था जिसके दो निहितार्थ थे, एक तो वेद के पीछे चलो अर्थात् वेदों की ओर लौटो और दूसरा आर्य समाज के दरवाजे सबके लिए खुले रखो।

आज आवश्यकता है उपयोगी आर्य समाजों के निर्माण की। अर्थात् आर्य समाज केवल साप्ताहिक सत्संग के लिए न हों बल्कि वहां योग, संस्कृत शिक्षण, स्वास्थ्य शिविर, पुस्तकालय, वाचनालय, नियमित रूप से चलें। गोर-रक्षा, भ्रूणहत्या, आतंकवाद, नशाखोरी, जातिवाद, भ्रष्टाचार जैसी ज्वलंत समस्याओं पर चिंतन बैठकें हों। हम कितने सक्रिय, शालीन, तेजस्वी एवं योग्य बनकर विश्व का कल्याण कर रहे हैं, इसी पर आर्य समाज का भविष्य निर्भर है। जातिवाद, साम्प्रदायिक, भ्रष्टाचार, नशाखोरी, पाखंड, शोषण व नारी उत्पीड़न आदि से अमाज त्रस्त है और आर्य समाज को ही इनका उन्मूलन करना है। आर्य समाज की आज देश व विश्व मानव समाज को पहले से भी अधिक आवश्यकता है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि मत एवं वर्ग भिन्नता को समाप्त कर वेद के अनुरूप समाज बनाने तथा अपने अभीष्ट उद्देश्य के लिए हम सबको अनवरत प्रयास करते रहना होगा। ○○

महर्षि दयानन्द सरस्वती का दीपावली पर्व से गहरा संबंध है। दीपावली के ही दिन महर्षि दयानन्द जी ने अपना भौतिक शरीर छोड़ा था। समूचा आर्य जगत दीपावली के पर्व को ऋषि निर्वाणोत्सव के रूप में मनाता है और इस दिन उनके महत्व योगदान और विशेषताओं को स्मरण किया जाता है उन्हें नम्र श्रद्धाजलि दी जाती है। आर्य समाज के इतिहास में दीपावली का पर्व स्वामी जी का स्मृति पर्व है। ऋषि दयानन्द ने दीपावली के दिन शरीर का त्याग कर संसार को संदेश दिया था, 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतम् गमयति।' महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना अध्यात्म, दर्शन, धर्म, शिक्षा, परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व को ध्यान में रखकर दी थी।

महर्षि दयानन्द के अनमोल वचन

नरसिंह सोनी
कोषाध्यक्ष-आर्य समाज, बीकानेर, राजस्थान

सत्यार्थ प्रकाश महर्षि दयानन्द सरस्वती की एक अद्‌भुत रचना है, जिसमें जन्म से लेके मृत्यु पर्यंत कर्म-कर्तव्य के बारे में बड़ी खोजपूर्ण व वेद और मनुस्मृति आदि के आधार पर लिखा गया है। इसके अलावा सभी धर्मों की मान्यताओं की प्रश्न-उत्तर के रूप में विवेचना की गयी है। जिनका संक्षेप में कुछ विषयों पर प्रकाश डालने की कोशिश की गई है।

रक्षा करने से ओम् आकाशवत् व्यापक होने से 'श्वम्' सबसे बड़ा होने से ईश्वर का नाम 'ब्रह्म' है। ओ३म् जिसका नाम है और कभी नष्ट नहीं होता, उसी की उपासना करने योग्य है, अन्य की नहीं। सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम ओ३म् कहा गया है, अन्य सभी यौगिक नाम हैं-

सब जगत के बनाने में 'ब्रह्मा' सर्वत्र व्यापक होने से 'विष्णु' दुष्टों को दंड देने रुलाने से 'रुद्र' मंगलमय और सबका कल्याणकर्ता होने से 'शिव' जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी, स्वयं प्रकाश स्वरूप और प्रलय में सबका काल और काल का काल हैं, इसलिए परमेश्वर का नाम कालाग्नि है। जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव, प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अंतर्यामी आत्मा है, इससे ईश्वर का नाम परमात्मा है।

जो सबका रक्षक, जैसा अपने संतानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इससे ईश्वर का नाम पिता है। जन्म से 5वें वर्ष तक बालकों की माता, 6वें वर्ष से 8वें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और 7वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने संतानों का उपनयन करके आचार्य कुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हो, वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें। और शूद्रादि वर्ण उपनयन किए बिना, विद्याभ्यास के लिए गुरुकुल में भेज दें। उन्हीं के संतान विद्वान, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में संतानों का लाडन कभी नहीं करते, किंतु ताड़ना ही करते रहते हैं।

जो माता-पिता और आचार्य संतान और शिष्यों का ताडन करते हैं, वे जानो अपने संतान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो संतानों व शिष्यों का लाडन करते हैं वे अपने संतानों और शिष्यों को विष पिलाके नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाडन से संतान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताडना से गुणयुक्त होते हैं। संतान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाडन से अप्रसन्न रहा करें, परंतु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताडन न करें, किंतु ऊपर से भय प्रदान करें और भीतर से कृपा दृष्टि रखें। जैसे अन्य शिक्षा की, वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्या, भाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें।

माता शत्रुः पिता बैरी येन बालों न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

- (ची.नी.)

जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट सह के, धर्म ही के अनुष्ठान करने से, जीवात्मा,

सब जगत के बनाने में 'ब्रह्मा' सर्वत्र व्यापक होने से 'विष्णु' दुष्टों को दंड देने रुलाने से 'रुद्र' मंगलमय और सबका कल्याणकर्ता होने से 'शिव' जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी, स्वयं प्रकाश स्वरूप और प्रलय में सबका काल और काल का काल हैं, इसलिए परमेश्वर का नाम कालाग्नि है। जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव, प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अंतर्यामी आत्मा है, इससे ईश्वर का नाम परमात्मा है। जो सबका रक्षक, जैसा अपने संतानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इससे ईश्वर का नाम पिता है।

ज्ञान, अर्थात् पृथ्वी से लेके परमेश्वर पर्यंत पदार्थों के विवेक से बुद्धि, अर्थात् दृढ़ निश्चय पवित्र होता है। इससे स्नान भोजन के पूर्व अवश्य करना चाहिए।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारितस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम्॥

-मनु.

जो सदा नम्र, सुशील, विद्वान और वृद्धों की सेवा करता है, उसको आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चारों सदा बढते रहते हैं और जो ऐसा नहीं करते, उनके आयु आदि चारों नहीं बढ़ते।

सम्भवति यस्मिन् स संभवतः कोई कहे कि माता-पिता के संग के बिना संतानोत्पत्ति, किसी के मृतक जिलाए, पहाड़ उठाए, समुद्र में पत्थर तराए, चंद्रमा के टुकड़े किए, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सीग देखे और बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया, इत्यादि सब असंभव है। क्योंकि ये सब बात सृष्टिक्रम के विरुद्ध है और जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो, वही संभव है। ○○

आर्य समाज का अष्टम नियम...

विजय बिहारी लाल माथुर

अ

विद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए

ओ३म केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्याऽअपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः।। यजुर्वेद २९/३६

अर्थात् हे विद्वान् पुरुषों जिन पुरुषों के पास सुवर्ण नहीं है, उन्हें स्वर्ण और जिनके पास विद्या बुद्धि नहीं है उन्हें विद्या का दान करो और इस प्रकार आप सम्यक् प्रसिद्ध होओ।

अविद्या का वैदिक स्वरूप : विद्या और अविद्या के सम्बद्ध में यजुर्वेद के अध्याय ४० में मंत्र संख्या ९ से १४ विस्तार से मानवमात्र का मार्गदर्शन करते हैं। यथा-

अंधन्तमः प्र विशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूयऽयइव ते तमो य ऽ उ सम्भूत्या रताः।। यजुर्वेद ४०/११

अर्थात् जो लोग परमेश्वर को छोड़कर अनादि, अनुत्पन्न सत्व, रज और तमोगुण सभी प्रकृति रूप जड़ वस्तु की उपासना करते हैं वे अंधकार को प्राप्त होते हैं और जो महत्वादि स्वरूप से परिणाम को प्राप्त हुई सृष्टि में रमण करते हैं वे उससे अधिक अविद्यारूप अंधकार को प्राप्त होते हैं।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभय सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।। युजर्वेद ४०/१

भाव है कि कार्यरूप सृष्टि व उसके गुण-कर्म-स्वभाव तथा कारणरूप जगत् इन दोनों को जानने वाले मृत्यु-दुख से पार होकर मोक्षसुख को प्राप्त होते हैं।

अंधन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूयऽइवते तमोयऽउ विद्याया रताः।। यजुर्वेद ४०/१२

भावार्थ यह है कि जो मनुष्य कारण रूप परमेश्वर से भिन्न जड़ वस्तु की उपासना करते हैं वे अंधकार को प्राप्त होते हैं।

इन विवेचन का निष्कर्ष निम्न मंत्र प्रदान करता है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।। यजुर्वेद ४०/१४

अर्थात् जो विद्या और अविद्या दोनों को एक साथ जानता है अर्थात् ज्ञान और कर्म एक साथ साधना में लाता है, ज्ञानपूर्वक कर्म करता है, तथा कर्त्तव्य कर्मयुक्त ज्ञान की वृद्धि करता रहता है वह कर्त्तव्य कर्म से मृत्यु को हर कर विद्या से अमृत-मोक्ष को प्राप्त होता है। उपर्युक्त मंत्रों से विद्या एवं अविद्या दोनों का महत्व स्पष्ट किया गया है। विद्या से तात्पर्य है कर्त्तव्य-कर्महीन, उपासना-आराधनारहित कोरा अकर्मण्यतारूप ज्ञानवाद अथवा कोरी पराविद्या तथा अविद्या से आशय है कि उपासना, भक्तिहीन, विवेक, बुद्धिविहीन, भौतिक पदार्थ विज्ञान के कर्म कलाप अर्थात् अपराविद्या।

धर्म का लक्ष्य वैशेषिकदर्शन में महर्षि कणाद के अनुसार अभ्युदय एवं निःश्रेयस, सांसारिक उन्नति एवं मोक्ष की प्राप्ति होना है। अपराविद्या (या अविद्या) सांसारिक भौतिक उन्नति-तृण से सृष्टि पर्यन्त के अध्ययन से प्राप्त कराने का साध है जबकि एकाकी यह अंधकार में ढकेलती है। पराविद्या आत्मा परमात्मा के ज्ञान से संबंधित है व मोक्ष तक प्राप्त कराती है, परंतु एकाकी यह भी अंधकार को ही प्राप्त कराएगी। आवश्यकता दोनों को समन्वित रूप से, समुचित संयोजन से एवं पारलौकिक उद्देश्य पूर्ण करने के लिए प्राप्त करने की है।

लौकिक अर्त विद्या : सामान्य रूप से विद्या का अर्थ ज्ञान की प्राप्ति तथा अविद्या का अर्थ ज्ञान के अनुभव से रहित समझा जाता है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है-

त्रयो धर्मस्कंधा यज्ञोऽध्ययनदानमिति प्रथमस्तप एवं द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयाः।

छान्दोग्यउपनिषद् २/२३/१

अर्थात् धर्म के तीन स्कंध हैं यज्ञ, अध्ययन एवं दान प्रथम स्कंध है, तप द्वितीय स्कंध है तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक आचार्य कुल में वास करके वेदाध्ययन एवं विद्या प्राप्ति तृतीय स्कंध है। मानव जीवन के भी चार पुरुषार्थ कहे गये हैं, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि उपर्युक्त तीनों धर्मस्कंधों एवं चारों पुरुषार्थों का ज्ञान अनिवार्य आवश्यकता के रूप से प्रभावित करता है। इन सबकी प्राप्ति एवं संपादन हेतु विद्या, ज्ञान परमावश्यक है।

धर्मस्कन्ध एवं विद्या : यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। यजुर्वेद १८/१६

वेद की आज्ञा है कि धर्म का प्रथम महत्व का कार्य यज्ञ है। यज्ञ की अनेक परिभाषाएं की गई हैं, परंतु महर्षि दयानंद ने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में लिखा है 'यज्ञ उसे कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प, अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग, और विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्रादि, जिससे वायु, वृष्टि, जल औषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूं। इस महत्वपूर्ण कार्य यज्ञ का संपादन विद्या के बिना सम्भव नहीं है। महर्षि ने संस्कारविधि में आदेश दिया है कि यज्ञकार्य मंत्र पाठ (एवं अर्थ समझनें सहित) यजमान को स्वयं करना चाहिए। मूर्खमति, काला अक्षर भैंस बराबर अविद्या आवरण से ढके यजमानों से पौराणिक पंडित स्वयं अशुद्ध उल्टा सीधा गड़बड़ मंत्र पाठ कर, यजमानों की ओर से संस्कार के क्रियाकलाप स्वयं कर लेते हैं यह अवैदिक तथा अकरणीय है। बालविवाह में वर-वधु दोनों की ओर से दो पंडित विवाह-

जो विद्या और अविद्या दोनों को एक साथ जानता है अर्थात् ज्ञान और कर्म एक साथ साधना में लाता है, ज्ञानपूर्वक कर्म करता है, तथा कर्त्तव्य कर्मयुक्त ज्ञान की वृद्धि करता रहता है वह कर्त्तव्य कर्म से मृत्यु को हर कर विद्या से अमृत-मोक्ष को प्राप्त होता है। उपर्युक्त मंत्रों से विद्या एवं अविद्या दोनों का महत्व स्पष्ट किया गया है। विद्या से तात्पर्य है कर्त्तव्य-कर्महीन, उपासना-आराधनारहित कोरा अकर्मण्यतारूप ज्ञानवाद अथवा कोरी पराविद्या तथा अविद्या से आशय है कि उपासना भक्तिहीन, विवेक बुद्धिविहीन निरे भौतिक पदार्थ विज्ञान के कर्म कलाप अर्थात् अपराविद्या। धर्म का लक्ष्य वैशेषिकदर्शन में महर्षि कणाद के अनुसार अभ्युदय एवं निःश्रेयस, सांसारिक उन्नति एवं मोक्ष की प्राप्ति होनों हैं। अपराविद्या (या अविद्या) सांसारिक भौतिक उन्नति-तृण से सृष्टि पर्यन्त के अध्ययन से प्राप्त कराने का साधन है जबकि एकाकी यह अंधकार में ढकेलती है। पराविद्या आत्मा परमात्मा के ज्ञान से संबंधित है व मोक्ष तक प्राप्त कराती है, परंतु एकाकी यह भी अंधकार को ही प्राप्त कराएगी। आवश्यकता दोनों को समन्वित रूप से, समुचित संयोजन से एवं पारलौकिक उद्देश्य पूर्ण करने के लिए प्राप्त करने की है। लौकिक अर्तविद्या : सामान्य रूप से विद्या का अर्थ ज्ञान की प्राप्ति तथा अविद्या का अर्थ ज्ञान के अनुभव से रहित समझा जाता है।

संस्कार में प्रतिज्ञा मंत्र बोल प्रतिज्ञा कर लेते हैं। प्रतिज्ञा मंत्र उत्तम पुरुष में है। जैसे हे वरानने! मैं उत्तम संतान की प्राप्ति हेतु धर्मपत्नी के रूप में तेरा हाथ ग्रहण करता हूं। दो पंडितों के बीच इस प्रतिज्ञा से उन पंडितों के परस्पर विवाह अग्नि की साक्षी में हुए या वर-वधु के। यह संस्कार का सारा अनर्थ अविद्या के कारण हो रहा है। अन्य यज्ञादि में भी अविद्या के कारण यजमान की स्वयं यही स्थिति है।

यजमान स्वयं विद्यायुक्त हो, व मंत्रपाठ, यज्ञकार्य स्वयं करे यह विद्या से ही सम्भव है, यज्ञ के जो अन्य कार्य, तथा विद्वानों का सत्कार, शिल्पविद्या की उन्नति रसायन व अन्य संबंधित शास्त्रों का ज्ञान विद्यादि शुभ गुणों का दान, अग्निहोत्र आदि सभी कार्य विद्या की प्राप्ति के बिना सम्भव नहीं हो सकते। धर्म के द्वितीय स्कंध अध्ययन का विद्या से सीधा संबंध है, दान भी वही कर सकता है जो विद्या के कारण उदार मन हो, जो निरंतर दान के सत्पात्र का निर्णय कर सके। आज सत्पात्रता को ध्यान में रखे बिना जो 'आंख का अंधा गांठ का पूरा' के अनुसार मठो, मंदिरों, भंगेड़ी, नशेबाज, साधुनामधारी लोगों को दान दिया जा रहा है, विचारणीय है कि इस दान का विद्याध्यन, धर्म प्रचार, जातिसुधार, जाति संगठन, देशोद्धार आदि शुभ कार्यों में क्या लेशमात्र भी उपयोग हो रहा है।

धर्म के द्वितीय स्कंध तत्व के हेतु विद्या परम आवश्यक है। कतिपय सम्प्रदायों की मान्यता है कि शरीर को अधिक से अधिक कष्ट सहन का अभ्यासी बनाया जाए तथा इसके लिए नाना प्रकार की विधियां वे प्रयुक्त करते हैं, परंतु परमेश्वर द्वारा अत्यंत दयापूर्वक हमारे पूर्वजन्मों के पुण्य-प्रताप से प्राप्त शरीर को नाना प्रकार से कष्ट देना, उसे क्षीण करना ईश्वर के प्रति कृतघ्नता है, तप नहीं है।

सत्य एवं न्याय हेतु सब प्रकार के कष्ट सहन करना एवं कष्टों के उपरांत भी सत्यपथ से विचलित न होना ही सच्चा तप है। स्पष्ट है कि इस कार्य हेतु विद्या से तपी हुई बुद्धि ही कर सकती है। तीसरा स्कंध ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुकुल में वास करके सांगोपांग वेदाध्ययन करना है। यह स्कंध निश्चित रूप से विद्या-प्राप्ति का ही साधन है तथा इसका फल या परिणाम ही सच्ची विद्या उपार्जन करना है।

जीवन के पुरुषार्थ एवं विद्या : धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार मानव जीवन के आवश्यक लक्ष्य है। इनके हेतु प्रत्येक समुचित पुरुषार्थ एवं प्रयत्न करना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। धर्म के दस लक्षण जो मनु महाराज ने बताए हैं उनमें विद्या भी एक है, क्योंकि विद्या बिना धर्म का ज्ञान, धर्म की क्रियाएं तथा धर्म-अधर्म का भेद हो ही नहीं सकता। धर्म की शास्त्रकारों ने जितनी भी परिभाषाएं की है, सभी में विद्या का होना आवश्यक माना गया है। धर्म यदि धनी (पति) है तो विद्या उसकी वधु है, अर्थात् दोनों का पारस्परिक संबंध निकटतम है।

अर्थ जीविकोपार्जन हेतु धर्मपूर्वक धन कमाना, संचय करना व धर्मपूर्वक ही उसका उपभोग अपने, परिवार व समग्र समाज के हेतु करना अर्थ के अंतर्गत है। धन के बिना दान एवं यज्ञ जैसे परोपकारी कार्य एवं उदरपोषण कर जीवित रहने व परिवार पालन जैसे आवश्यक कार्य भी नहीं हो सकते। वेद की आज्ञा है सौ हाथों से कमाओं व हजार हाथों से दान करो परंतु दान करना तभी सम्भव होगा जब अर्थोपार्जन होगा तथा धन कमाने की विद्या प्राप्त किए बिना धन कोई भला कैसे कमाएगा? काम, जीवन की अत्यंत बलवान एवं अनिवार्य आवश्यकता है, और विवेकपूर्ण उपभोग से उतना ही कल्याणकारक एवं सृष्टि में मानवक्रम को विद्यमान रखने में सक्षम है, जितना कि अविवेक, स्वच्छंदता एवं अज्ञानपूर्वक दुरुपयोग से 'सर्वनाश कर सकता है। जीवन पर्यंत कामजयी तो महर्षि दयानन्द जैसे शताब्दियों में एक-दो ही आते हैं, परंतु गृहस्थाश्रम धर्म एवं विधिपूर्वक काम को नियंत्रण में रखने वाला' भी इस नियंत्रण के चमत्कारों का अनुभव कर सकता है। यह सब बिना विद्या के सम्भव नहीं है। OO

क्रांतिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा

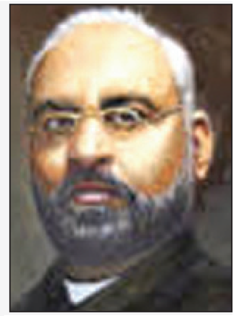

जन्म : 4 अक्टूबर
शत्-शत् नमन

श्यामजी कृष्ण वर्मा एक भारतीय क्रांतिकारी, वकील और पत्रकार थे। वो भारत माता के उन वीर सपूतों में से एक हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन देश की आजादी के लिए समर्पित कर दिया। इंग्लैंड से पढ़ाई कर उन्होंने भारत आकर कुछ समय के लिए वकालत की और फिर कुछ राजघरानों में दीवान के तौर पर कार्य किया पर ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों से त्रस्त होकर वो भारत से इंग्लैण्ड चले गये। वह संस्कृत समेत कई और भारतीय भाषाओं के ज्ञाता थे। उनके संस्कृत के भाषण से प्रभावित होकर मोनियर विलियम्स ने वर्माजी को ऑक्सफोर्ड में अपना सहायक बनने के लिए निमंत्रण दिया था। उन्होंने 'इंडियन होम रूल सोसाइटी', 'इंडिया हाउस' और 'द इंडियन सोसिओलोजिस्ट' की स्थापना लन्दन में की थी। इन संस्थाओं का उद्देश्य था वहां रह रहे भारतीयों को देश की आजादी के बारे में अवगत कराना और छात्रों के मध्य परस्पर मिलन एवं विविध विचार-विमर्श। श्यामजी ऐसे प्रथम भारतीय थे, जिन्हें ऑक्सफोर्ड से एम.ए. और बार-एट-ला की उपाधियां मिलीं थीं। श्यामजी कृष्ण वर्मा का जन्म 4 अक्टूबर 1857 को गुजरात के माण्डवी कस्बे में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीकृष्ण वर्मा और माता का नाम गोमती बाई था। जब बालक श्यामजी मात्र 11 साल के थे तब उनकी माता का देहांत हो गया जिसके बाद उनका लालन-पालन उनकी दादी ने किया। प्रारंभिक शिक्षा भुज में ग्रहण करने के बाद उन्होंने अपना दाखिला मुंबई के विल्सन हाई स्कूल में करा लिया। मुंबई में रहकर उन्होंने संस्कृत की शिक्षा भी ली। सन् 1875 में उनका विवाह भानुमती से करा दिया गया। महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त थे, विदेश में रहकर आर्य समाज का प्रचार किया।

'मृत्यु रहस्य' : महात्मा नारायण स्वामी

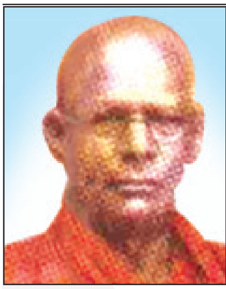

निधन : 15 अक्टूबर
शत्-शत् नमन

पूज्यपाद म. नारायण स्वामी जी महाराज आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान संन्यासी थे। 'मृत्यु-रहस्य' उनकी एक अनुपम कृति है जो मनुष्य के मस्तिष्क को चिंतन धारा में बहाने के लिए उपयोगी रचना है। यह पुस्तक मानव मन की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने का काम अति सरल ढंग से करती है। 'मृत्यु-रहस्य' जैसे दार्शननिक विषय को सरल-सरल और रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। स्वाध्याय प्रेमीजन श्री स्वामी महाराज की इस पुस्तक का रसास्वादन करके जहां आत्म लाभ लेंगे वहीं सन्तप्त आत्माओं को भी शान्ति मिलेगी। आर्य समाज के महान नेता तपस्वी, योगी विद्वान संत गम्भीर लेखक हैदराबाद के निजाम शासक के विरुद्ध सत्याग्रह का संचालन किया।

लौह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल

जन्म : 31 अक्टूबर
शत्-शत् नमन

सरदार वल्लभ भाई पटेल का जन्म 31 अक्टूबर, 1875 को गुजरात के नाडियाड में उनके ननिहाल में हुआ। वे खेड़ा जिले के कारमसद में रहने वाले झावेर भाई पटेल की चौथी संतान थे। उनकी माता का नाम लाडबा पटेल था। उन्होंने प्राइमरी शिक्षा कारमसद में ही प्राप्त की, बचपन से ही उनके परिवार ने उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। 1893 में 16 साल की आयु में ही उनका विवाह झावेरबा के साथ कर दिया गया था। 1897 में 22 साल की उम्र में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। 1900 में जिला अधिवक्ता की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, जिससे उन्हें वकालत करने की अनुमति मिली। गोधरा में वकालत की प्रेक्टिस शुरू कर दी, जहां इन्होंने प्लेग की महामारी से पीड़ित कोर्ट ऑफिशियल की बहुत सेवा की। क्रिमिनल लॉयर के रूप में नाम कमाया। अपनी वकालत के दौरान उन्होंने कई बार ऐसे केस लड़े जिसे दूसरे निरस और हारा हुए मानते थे। उनकी प्रभावशाली वकालत का ही कमाल था कि उनकी प्रसिद्धी दिनों-दिन बढ़ती चली गई। यहीं उनके पुत्री मणिबेन का 1904 व पुत्र दह्या का 1905 में जन्म हुआ। सरदार पटेल अपना कर्तव्य पूरी ईमानदारी, समर्पण व हिम्मत से साथ पूरा करते थे। भारत की रियासतों को विलय करने में उनकी भूमिका को सदैव याद किया जाता रहेगा। वह भारत के प्रथम गृहमंत्री थे, उन्हें लौह पुरुष के नाम से जाता जाता है।

पर्व की पवित्रता बनी रहे

जवाहर लाल कौल

दीपमाला का शुभ पर्व फिर आ रहा है। यह उत्साह और उल्लास का त्योहार है। हम चाहे इसे राम से जोड़ें या लक्ष्मी से इसका उद्देश्य हमारे जीवन में खुशियां लाना ही है। इसलिए कोई भी ऐसा काम इस पर्व की भावना के अनुकूल नहीं हो सकता जिससे दूसरों के लिए संकट पैदा हो जाए। क्या हम ऐसी दीवाली की कल्पना कर सकते हैं जिसमें मां-बाप अपने छोटे बच्चों को दूर रखने का प्रयास करें, बीमार और बूढ़े लोग इसके नाम से ही सहम जाएं? हम समय पर नहीं चेते तो ऐसा ही समय आने वाला है जब दीवाली शुभ संदेश देने वाली नहीं रहेगी- इससे लोग खुश नहीं होंगे, डर जाएंगे।

मैं आप के सामने जो तथ्य रखना चाहता हूं उनके बारे में आप पहले से ही जानते होंगे। मैं तो केवल याद दिलाने का प्रयास कर रहा हूं।

1. हमारे देश में कम से कम बीस प्रतिशत बच्चे दमा और सांस के अन्य विकारों से पीड़ित हैं। इनमें से बहुतों के विकार गंभीर बीमारियों का रूप धारण कर चुके हैं। इन बीमारों में से पचास प्रतिशत से भी अधिक दिल्ली जैसे नगरों में ही रहते हैं।
2. सांस के रोगों का अनुपात बूढ़ों में इससे भी अधिक है। चिकित्सा और जीवन यापन की बेहतर सुविधाओं के बावजूद नगरों में रहने वाले लोगों में ये रोग ग्रामीण लोगों की तुला में अधिक होते हैं।
3. दिल्ली में आग लगने और आग से जलने की घटनाओं में दीवाली के दिनों में खास वृद्धि होती है। सामान्य दुर्घटना में जलने की तुलना में पटाखों से जलना अधिक खतरनाक होता है क्योंकि इनमें बारूद और दूसरे रासायनिक पदार्थ होते हैं।

इनका कारण तो साफ है : हमारे नगरों-खासकर दिल्ली के वायु में भारी मात्रा में प्रदूषण है। कभी-कभी तो दिल्ली सबसे अधिक प्रदूषित नगरों के शिखर पर बैठक जाती है। शायद ही कोई मौसम हो जब दिल्ली का वायुमण्डल स्वास्थ्य के मापदंडों के अनुसार एकदम सही माना जाता हो। लेकिन दीवाली के दिनों में यह लगभग 'गैस चैम्बर' का रूप लेती है।

थोड़ा ध्यान दें कि इस हवा में होता क्या है : धुएं से पैदा होने वाले कार्बन-डाई-ओक्साइड के बारे में सब जानते हैं लेकिन इसी कार्बन के मोनो-ओक्साइड के बारे में हम कितना जानते है? यह गैस खामोश हत्यारिन है। जो मारने से पहले न तो आवाज करती है और न महसूस होने देती है कि मौत कितनी निकट है। एक बार वार करने पर व्यक्ति में चाहकर भी कुछ करने की हिम्मत नहीं रहती। कुछ दिन पहले दिल्ली में ही एक पूरा परिवार मौत की नींद सो गया क्योंकि बरसात से बचने के लिए वे अपनी ही कार में देर तक बैठे रहे।

इंजन से निकलने वाला कार्बन-मोनो-ओक्साइड उन्हें लील गया। यह अकेली घटना नहीं है- ऐसी दुर्घटनाएं होती ही रहती हैं। नाइट्रोजन और सल्फर के ओक्साइड, हाइड्रो कार्बन के विभिन्न यौगिक भी प्रदूषित वायु के अंग होते हैं। लेकिन एक खतरनाक गैस ओजोन भी धुएं से भरी धुंध यानी स्मोग को धातक बनाती है। स्मोग धुएं और धुंध के मिश्रण का नाम है जो भारी होने के कारण ऊपर से उतर कर धरती के निकट आकाश में लटका रहता है। इसमें पानी और धुएं के अतिरिक्त विभिन्न गैसें और धूल के कण भी होते हैं। इस शब्द का पहली बार उपयोग 1905 में यूरोप में किया गया जब कारखानों के धुएं के कारण धुएं के बादल नगरों के आकाश को ढंकने लगे थे। लेकिन अब यह विषैले बादल हमारे नगरों में आम दृश्य बन गए हैं। दिल्ली स्मोग के प्रकोप वाले दुनिया के तीन प्रमुख नगरों में एक है। इस तरह के बादल इसलिए अधिक खतरनाक होते हैं कि ये भूमि के बहुत पास होते हैं।

चिंता की बात यह है कि ये सारे तत्व उस धुएं में होते हैं जो दीवाली के दिनों पटाखों के कारण पैदा होता है। साधारण स्मोग की तुलना में यह इसलिए अधिक घातक है कि यह धरती के निकट ही नहीं होता हमें चारों ओर से घेरे रहता है। हम उसी को पीते हैं। दीवाली हम मनाएं और खूब उल्लास के साथ मनाएं। पटाखे और फुल्झड़ियां भी चलाएं, दिए भी जलाएं। आखिर यह हमारा प्रकाश पर्व है। लेकिन मर्यादा का भी ध्यान रखे। अगर हम गाड़ियों पर प्रदूषण के मानक लागू करते हैं, कारखानों को प्रदूषण रहित बनाने का प्रयास करते हैं तो अपने सामाजिक व्यवहार पर भी कुछ अंकुश लगाएं। हमारे शास्त्रों की भी यही सलाह है कि- अति का सर्वत्र त्याग करना चाहिए।

1. वही पटाखे जलाएं जिनसे कम धुआं छूटता है।
2. पटाखे जलाने की सीमा बांधे।
3. देर रात तक पटाखे विशेषकर तेज आवाज करने वाले न जलाएं।
4. पटाखे चलाने के लिए एक या तो स्थान ही तय करें। सब सड़कों को गंदा न करें।
5. पर्यावरण के संतुलन के लिए यज्ञ हवन को प्राथमिकता दें। OO

VEDAS ON CULTURAL UNITY AND SOCIAL PROCESSES

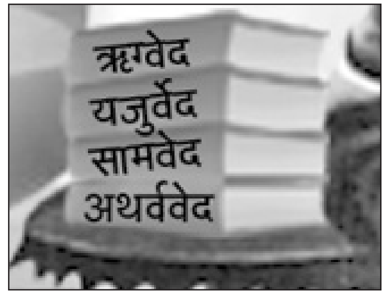

Arya Sanyasi Mahatma Gopal Swami Saraswati
Arya Vanaprasta Ashram, Arya Samaj, Noida

CULTURE AND CIVILISATION : 'Culture' and 'Civilisation' , I feel, are the two confused and yet the most exploited words in the modern world. We often call a civilized person or community, a cultured person or a cultured community and vice versa. But it is not so. Just as, in a human being or in any living entity, there is, union of body and soul for life, despite the fact, that both body and soul are different from each other. So in the case with 'civilisation' and 'culture'. Whatever progress or advancement is for providing best materialistic comforts for the bodies of human beings or for the human society, that is all related to 'civilisation'. And whatever is done, or thought of, to bring out the potentialities inherent in the soul for perfect actualization, is the cultural process. 'Culture' is more concerned with the thinking, morality and the metaphysical side of the persons and the society.

BHARTIYA SANSKRITI vs VEDIC CULTURE : It has become a fashion these days to talk in relation to Bharat of Bharitya Sanskriti, because these days every nation has its own brand of culture. As inhabitant of Bharat, we do have in high esteem 'Bhartiya Sanskriti' but rarely we try to find out the sources and constituents of 'Bhartiya Sanskriti'. Even political parties of Bharat talk of 'Bharitiya Sanskriti', without analyzing, what is it, and what does it mean? In making this statement, Iam fortified by the writing of (late) Vedamurti Shripad Damodar Satvalekav, who, in his book 'Bhartiya Sanskriti' (in Marathi)has expressed the same feelings. Ultimately he has proved that 'Bhartiya Sanskriti' is not the mixture of various cults or isms (like Buddhism, Jainism, Sikhism, etc.).Our Sanskriti is based on Vedas which constitute our remotest heritage. There is hardkc any literature in India from the earliest times to the age of Mahabharata, which is not pivoted round the Vedas and which does not regard the Vedas as a text of the Supreme Authority.

Our Sanskriti, therefore is Vedic. In my view, Vedic culture can be equated with river Ganges of Bharat. It is Ganges at Gomukha Glacier in HImalyas, and it is Ganges at Bay of Bengal where it meets with the ocean. It remains Ganges from beginning to end, whether a mighty river like Yamuna or any number of rivers or rivulets, or drain/drainage systems, may merge with it during the course of its flow. Vedas ate not only meant for Bhartiya habitants they are for the entire mankind on this planet and , therefore they are global. They are valid in all times and applicable to all without any distinction of caste, creed, colour, race, nationality, etc. so only Vedic culture based on Vedas has the potentiality of dynamising human beings and their social life not only Bharat but in the entire world. Millions of year have passed, only this Vedic culture has survived while most of the ancient cultures have gone into oblivion. I must say, that only Vedic culture is going to be the model in the future, not only for Indian but to the whole world, if world wants to flourish in proper directions. Therefore, in this paper all culture aspects have been discussed in the light of Vedas only.

VEDAS ON CULTURE AND CIVILISATION : The Vedic world for 'culture' is 'Sanskriti' and for 'civilisation' is Sabhyata'. ' Sanskriti' literally means the process of purification and refinement, not outwardly- not of outer appendages, but directly of inner essence. ' Sabhyata' is an abstract noun from Vedic words 'sabha' meaning a gathering of individuals who

prompt each other to shine. The world 'Sanskriti; appears in (Yajurveda mantra 7/14).

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रामस्पोषस्य ददितारः स्याम।
सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रोऽअग्नि।।

O God Som! May we be the preservers of thy uninterrupted strength-giving and enriching gift in the form of this culture. This culture comprising **(विद्या, सुशिक्षा, जनिता नीतिः)**, which is the foremost of all bounteous cultures in the entire world be the first choice of 'mitra' (friendly people)and 'agni'(the enlightened leaders in the society). As for the Sabha, it has been said-

न सा सभा यत्र न भांति कश्चित, न सा सभा यत्र विभति च एकः।
सभा तु सेवास्ति यथार्थरूपा, परस्परं यत्र विभन्ति सर्वे।।

That is not 'Sabha' where no body shines. Nor is thst a 'Sabha' in which there shines only one individual. The 'Sabha' in real sense is that where all shines together, one helping other to shine. So also, in 'Vidur Niti' in Mhahbharata, there is very good couplet-

न स सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
ना सौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति, न तत् सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्।।

That is not 'Sabha' where elders are not there. Elders are not elders if they do not speak of 'dharma' which is devoid of absolute truth, and that is not truth which is adulterated with deceptivity. The underlying idea in the word 'Sabha' denotes the Vedic theme of 'Sabhyata'.

CULTURAL UNITY AND VEDAS : In this Great World of the Great God, no two things are equal. Even the five fingers in a man's hand are not uniform. There is diversity everywhere in this cosmos; but in this diversity there is also unity and harmony. And that is why the whole cosmos is called as 'Universe' and not multiverse. The differently sized fingers are meant to make harmonious working if the hand possible. If all fingers were of uniform sized it would not have been possible for me to hold the pen and write even a single word. So diversity is for sake of harmony. But harmony is a means and not an end-the end is 'culture'. Vedas plead unity of culture in all progress of life. Cultural unity, according to Vedas is an abiding principle of life quite different from a pact or contract which may be honoured or dishonoured at will. According to Vedas, God has ordained the universal unity if mankind by providing same or similar places of drinking water, same stores of food to be divided retably with mutual accord, and putting all together under the one and same yoke. At the centre of this unity is God, and people are expected to move just as the spokes of a wheel are united with their axial nucleus. All must endeavour to move together, sit together and talk together with pious intentions and with equanimity in minds and heart, giving due to elderly and wise. Again it is only in Vedas that God decress "I make your mind and hearts full of mutual accord as well as free from mutual aversion. You all should love each other as faithfully and intensely, as a cow loves her new born child."

"Move together, speak together. Let you minds know each other with the same accords, with which the divine persons of yore understood their roles and enjoyed their share." Let yours be a common cause, common assembly, unite your mind, thoughts and purpose, and, let there be united your oblations for achieving your common goals, targets and objectives." "Let and the same be your resolve, let your mind and hearts be full of accord. Let there be unity in your agreements, because it is only through unity you live and prosper together." The above are the purports of few Veda mantras out of over 20,000, quoted here to establish the fact that unity is the bed rock of Vedic Culture, and it is through unity that human society can bear and withstand against all onslaughts, otherwise, divided, it is doomed to fall down.

This culture unity of Vedas percolates down below from the society to individual level by directing the individual to have unity of 'head' and 'heart'; to family level, by having unity of husband and wife, unity of brother and sisters, unity of sisters and sisters, sons and daughters and unity of friends and friends, and so on. Vedas repeatedly enjoin the mankind of unity and side by side warn it about disadvantages of disunity. "How can joy or sorrow overtake him, who through wisdom perceives the unitary spirit prevailing in all living beings." This rule serves as the guiding principle for cultural unity of the people at all level.

बहुमुखी प्रतिभा के धनी : महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्व. डॉ. धर्मपाल आर्य
पूर्व कुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विवि, हरिद्वार

'आर्यसमाज एक आंदोलन है' पाखंड और अंधविश्वासों के विरुद्ध, कुरीतियों के विरुद्ध अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध तथा हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध यह आंदोलन है, इसीलिए जनता से जुड़ा हुआ है और जनता से जुड़ाव के कारण ही इसमें बुराइयों के विरुद्ध लड़ने की शक्ति है

महर्षि दयानन्द सरस्वती का परिब्राजक संसार उद्धारक और विश्वप्रेमी रूप आर्य जनता को स्वीकार्य एवं ग्राह्य है। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्यय है, यह उद्घोषणा करने वाला व्यक्ति सभी के लिए स्वीकार्य होगा ही। उन्हें इस स्थिति तक पहुंचाने वाली घटना शिवरात्रि के रात्रि जागरण के समय हुई मूषक घटना सर्वविदित है। क्या कारण है कि प्रतिवर्ष शिवरात्रि के अवसर पर हम स्वामी दयानंद सरस्वती को स्मरण करते हुए भी, क्यों उद्वेलित नहीं होते और शिवत्व की प्राप्ति के लिए अग्रसर नहीं हो पाते। हम क्यों जड़ पाषाण हो गए हैं। हमारी मनुष्यता कहां छिपी है। स्वामी जी महाराज के गुरु दंडी स्वामी विरजानंद जी महाराज जैसे गुरु हमें क्यों नहीं मिलते।

वास्तव में हम गुण-कीर्तन के आदी बन गए हैं। जैसे गुरुद्वारों, मंदिरों में कीर्तन होते हैं, उसी प्रकार हम भी कीर्तन करते हैं। हम यह भी नहीं जानते हैं कि हम क्या कर रहे हैं। हमें उन शब्दों के अर्थ भी पता नहीं उन शब्दादेशों को अपने जीवन में उतारने की बात तो बहुत दूर है। हम महर्षि दयानंद सरस्वती का गुणगान भी इसी प्रकार कर लेते हैं। उने नाम पर कुछ समारोह कर लेते हैं। एक दूसरे की प्रशंसा करते हैं और भूल जाते हैं कि हमें कल भी कुछ करना है। आर्य केंद्रीय सभा के प्रधान धर्मपाल जी ने एक बार कहा था कि हमें आर्य समाज या वैदिक धर्म सप्ताह में केवल एक दिन याद आता है। बाकी छः दिन हम सोए रहते हैं। क्या ऐसे धर्म से काम हो सकेगा। वास्तव में यदि हम धार्मिक हैं, यदि उस परिब्राजक का स्मरण करते हैं यदि हमें उसका वह विश्वप्रेमी रूप प्रिय है और यदि हम भी संसार का उद्धार होने की कामना करते हैं तो हमें अपने आप को त्याग, तपस्या, कठिन परिश्रम की भट्टी में तपाना होगा। हमें अपने अंदर वही तड़प महसूस करनी होगी, जो तड़प 'मूलशंकर' के मन में शिवरात्रि के अवसर पर थी।

सुप्रसिद्ध रोम्यां रोलों ने रामकृष्ण परमहंस का जीवन-चरित्र लिखा था। उसमें उन्होंने एक अध्याय ऐसा भी सम्मिलित किया है जिसमें उन्होंने भारत की जनता के कल्याण करने वाले, समाज सुधारकों के संक्षिप्त परिचय दिए हैं। महर्षि दयानंद सरस्वती के संबंध में उन्होंने लिखा है कि वह पुरुष सिंह के समान था जिसको यूरोप के लोग जब भारत के विषय में विचार करते हैं तो भूल जाते हैं। परंतु एक दिन आएगा, जब वे विवश होंगे, उसको याद रखने के लिए। क्योंकि ऋषि दयानंद में ऐसे गुणों का समावेश था। जिनका एक व्यक्ति में होना कठिन होता है। वह विचारक कर्मयोगी होने के अतिरिक्त, जन्म से ही नेतृत्व की क्षमता रखता था। रोम्यां रोलां ने केशवचन्द्र सेन को ईसाइयत की ओर झुकते दिखाया है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने केशव बाबू के पत्रों की नकलें भी अपनी पुस्तक में दी हैं। परंतु महर्षि दयानंद के लिए उन्होंने लिखा था- 'दयानन्द ने अकेले ही देश के आक्रमणकारियों के विरुद्ध अपना झंडा बुलंद किया और ईसाई पंथ के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। उसकी भारी और तीक्ष्ण तलवार ने उसे दबा दिया।' वह ऋषि अकेला था। वह किसी के सामने झुकता न था। क्या आज हमारे अंदर वही साहस है? ऋषि बोधोत्सव हमें आत्मालोचन एवं आत्म-विश्लेषण की प्रेरणा देता है। आर्यसमाज एक आंदोलन है, पाखंड और अंधविश्वासों के विरुद्ध, कुरीतियों के विरुद्ध अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध तथा हर प्रकार के शोषण के विरुद्ध। यह आंदोलन है, इसीलिए जनता से जुड़ा हुआ है और जनता से जुड़ाव के कारण ही इसमें बुराइयों के विरुद्ध लड़ने की शक्ति है। आज भी यह संगठन मद्य निषेध की बात करता है, भारतीय भाषाओं को व्यवहार में लाने की बात करता है और गोरक्षा की बात करता है और हमें पूर्ण विश्वास है कि हम अपने इस त्रिसूत्री अभियान में अवश्य सफल होंगे। एक समय था जब आर्य समाज का प्रत्येक सदस्य स्वाधीनता संग्राम से जुड़ा था। आज भी प्रत्येक सदस्य राजनीति में भले ही कोई रुचि न ले, पर वह किसी भी स्तर पर भ्रष्टाचार और अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए तत्पर है।

भारत ने पहली स्वाधीनता की लड़ाई 1857 में लड़ी थी। हमारे कुछ विद्वान कहते हैं कि शिवाजी और राणा प्रताप की लड़ाईयां भी स्वाधीनता के लिए थी। निस्संदेह वे लड़ाईयां भी स्वाधीनता के लिए थी। 1857 की लड़ाई अंग्रेजों के विरुद्ध और दासता से मुक्ति पाने के लिए थी। यह कहा जाता है कि 1857 की लड़ाई में महर्षि दयानंद सरस्वती ने सक्रिय भूमिका निभाई थी। हम उनके अनुयायी है। वे हमारे आदर्श पुरुष हैं, उन्हें नमन!

महर्षि स्वामी दयानन्द की घोषणा

सुखी संसार हो जिससे वह सद्ज्ञान लाया हूं,
प्रभु की वेद वाणी का सच्चा बयान लाया हूं।
आदि सृष्टि में ईश्वर ने दिया जो ज्ञान वेदों का,
मैं उस सच्चे सनातन धर्म का विज्ञान लाया हूं।
ब्रह्मा से जैमिनी पर्यन्त है ऋषियों ने जो माना,
उसी सत्य वेद अमृत का करें अब पान लाया हूं।
जो सब ऋषियों का प्यारा है जिसे संतों ने धारा है,
जो भक्तों का सहारा है वह आलीशान लाया हूं।
इसी सत्य धर्म पर श्रीराम और श्रीकृष्ण थे शैदा,
गुरुगोविन्द, वैरागी वीर हुए बलिदान लाया हूं।
जो सबको शान्ति, मुक्ति, परमपद देने वाला है,
सच्ची भक्ति के आनन्द का मैं वह सामान लाया हूं।
यह अपने भक्तों को सन्मार्ग पर चलना सिखाता है,
सदा मानव का उससे होता है कल्याण लाया हूं।
महाभारत के पीछे जो बनाये पंथ लोगों ने,
है वेदों के विरुद्ध सारे यह इक पहचान लाया हूं।
धर्म के नाम पर यह लूटते हैं अपने भक्तों को,
मैं इन सब ढोंगियों के पोल का फरमान लाया हूं।
जड़ पत्थरों की पूजा में तू जीवन को न गंवा बंदे,
जो सत्-चित्-आनन्द है वह भगवान लाया हूं।
नकली पंथों व मजहबों ने बहकाया आज दुनिया को,
कसौटी पर खरा उतरे मैं वह ईमान लाया हूं।
प्रभु निराकार है उसकी न सूरत और न मूरत है,
अजन्मा, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान लाया हूं।
उठो अब ईश के भक्तों करो प्रचार वेदों का,
मैं अपने दिल में अरमानों का तूफान लाया हूं।
बनाओ आर्य सब संसार, समाजों की स्थापन कर,
'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का वैदिक फरमान लाया हूं।
ऋषि की घोषणा से ही जगा यह विश्व सारा है,
'सेवक' पर भी दया उसकी जो यह गुणगान लाया हूं।
स्वामी दयानन्द अपने समय के, अद्वितीय हुए धर्म प्रचारक।
आर्य समाज दिए शिक्षा संस्थान, कितने प्रबल समाज सुधारक।।

जगमग दीप जलाएं

राधेश्याम आर्य, विद्यावाचस्पति
मुसाफिरखाना, सुल्तानपुर, उप्र

आओ! आर्य सपूतों आओ! जगमग दीप जलाएं।
गहन तिमिर में भटक रही जगती को राह दिखाएं॥

मिट्टी के दीपों से निश्चय, मिटता नहीं अंधेरा,
अणगणित तारों के उगने से, होता नहीं सबेरा,
दानवता के तिमिर सैन्य ने, महिमण्डल है घेरा,
रहा नहीं मानवता का, सुंदर-सुखद सबेरा,

बिखरा किरणें ज्ञान ज्योति की, नया सबेरा लाएं।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएं॥

तम के अंचल में सोता है, आज यहां दिनमान,
ज्ञान हमारा कहां लुप्त है, विस्तृत क्यों अज्ञान?
चलो, देख लो, कहां सो रहा, भारत का अभिमान,
सत्य-शिवम्-सुन्दरता पूरित, कहां गए प्रतिमान?

मन करके आलोक पुंज हम, जाग्रत ज्योति जगाएं।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएं॥

लोभ-मोह-मद मत्सर का है फैला पारावार,
काम-क्रोध बढ़ रहा चतुर्दिक, नष्ट धर्म का सार,
मानवता के तत्वों का क्यों? होता है व्यापार,
भौतिक संस्कृति नहीं कभी, कर सकती है उपचार,

धर्माध्यात्म प्रदीप प्रमाहम, पुनः प्रदीप्त कराएं।
गहन तिमिर में भटक रही, जगती को राह दिखाएं॥

ऐसा दीप जले जिससे, न रहे तिमिर का लेश,
ज्योतिर्मय हो पूर्ण धरा यह, प्रगटे ज्ञान दिनेश,
दम्भ द्वेष-मिथ्या-हिंसा का बचे नहीं अवशेष,
प्रेम-दया-ममता का, सदा रहे उन्मेष,

शांति सफलता-समृद्धि के संगीत मनुज सब गाएं।
गहन तिमिर में भटक रही जगती को राह दिखाएं॥

वेद और धर्म

गतांक से आगे...

डा. दीवानचन्द, डी.लिट.

इस मंत्र में धर्म शब्द बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। वैसे वेद में धर्म शब्द का प्रयोग एक वचन में भी हुआ है। जहां एक वचन का प्रयोग है, वहां धर्म के आगे कोई अपवाद स्वीकार नहीं किया गया। बहुवचन में अपवाद आ सकते हैं और

यह कहा जा सकता है कि धर्म के रूप अनेक हैं। मनुष्यों के संबंद में तो यह निर्विवाद कहा जा सकता है, क्योंकि वे भिन्न-भिन्न है। क्षत्रिय का धर्म ब्राह्मण-धर्म से भिन्न है। अतः धर्म शब्द का बहुवचन में प्रयोग समीचीन है।

समिधानः सहस्रजिदग्ने धर्माणि पुष्यसि। देवानां दूत उक्थ्यः। ५-२६-६

हे अग्नि! तुम सहस्रजित हो। प्रज्वलित होकर तुम धर्मों को पुष्ट करते हो और देवताओं के प्रशंसनीय दूत हो। अग्नि धर्म से अमवेत व्यक्ति ही विजयी बनते हैं और एकाकी होते हुए भी सहस्रों को पराजित कर देते हैं। जिसके अंदर आग्नेयता प्रज्वलित है, जो भस्मवत् दीन, पददलित तथा निष्प्रभ नहीं है, वही धर्मों, कर्तव्यों, नियमों, व्रतों आदि का पालन-पोषण कर सकता है और वही दिव्यता का संदेश अन्यों तक पहुंचा सकता है।

उत यासि सवितः त्रीणि रोचना उत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि।

उत रात्री मुभयतः परीयसे उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः। ५-८१-४

हे सविता! तुम तीनों लोकों में जाते हो। तुम सूर्य की रश्मियों के साथ एक होते हो। तुम रात्रि के दोनों ओर घेरा डालते हो और हे देव! तुम धर्मों के द्वारा मित्र बनते हो। जब सूर्य की रश्मियां फैलती हैं, तो एक सैकंड में ८६ हजार मील की गति से चलकर वे पृथ्वी, अंतरिक्ष तथा द्यौलोक तक अल्पकाल में ही पहुंच जाती हैं। किरणें क्या जा रही हैं मानों उनके साथ समपूर्ण सूर्य ही जा रहा है और सबको प्राप्त हो रहा है। यह सूर्य रात्रि के पूर्व तथा पश्चात दोनों और वर्तमान है और जो आदि तथा अंत में है, वह मध्य में भी है। इस कथन के अनुसार सूर्य का प्रकाश हमारे साथ सदैव विद्यमान रहता है। वह हमारा परित्याग नहीं करता। चाहे जैसा सघन से सघन अंधकार हो, वह सूर्य नहीं, तो सूर्य के प्रतिनिधि चंद्र, विद्युद्दीप, लालटेन आदि के द्वारा इसे भग्न होता ही रहता है। यह सूर्य धर्मों द्वारा मित्र बनता है। तपस्वी तप द्वारा इसे अपनाते हैं। भक्त उपासना द्वारा इसे अपनाते हैं, इसके वरणीय भर्ग को धारण करते हैं। कर्मकांडी इष्टा पूर्त तथा यज्ञों, सवनों द्वारा सूर्य के सखाभाव को प्राप्त करते हैं। एक नहीं, ऐसे विविध धर्म हैं, यज्ञानुष्ठान हैं, कर्त्तव्य कर्म हैं जो साधक को सूर्य के सखित्व में पहुंचा देते हैं।

यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ८-५२-३

मित्र के प्रति मित्र के एक नहीं, अनेक करणीय धर्म हैं। मित्र को मित्र का साथ देना है- संपत्ति में भी और विपत्ति में भी। मित्र मित्र को सद्धर्म पर चलाता है और अधर्म से रोकता है। वैसे तो कुछ पग चलकर साथ देने से ही मैत्री हो जाती है, पर तीन पैर रखना, तीनों लोकों में साथ देना, शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्रों में सहयोग करना ऐसा प्रयोग है जो मित्र को विष्णुपद प्रदान करने की शक्ति रखता है, उसे वास्तविक अर्थों में व्यापकता देता है, पल-पल तता

धर्म के रूप अनेक हैं, मनुष्यों के संबंद्ध में तो यह निर्विवाद कहा जा सकता है, क्योंकि वे भिन्न-भिन्न है। क्षत्रिय का धर्म ब्राह्मण-धर्म से भिन्न है। अतः धर्म शब्द का बहुवचन में प्रयोग समीचीन है।

हे अग्नि! तुम सहस्रजित हो। प्रज्वलित होकर तुम धर्मों को पुष्ट करते हो और देवताओं के प्रशंसनीय दूत हो। अग्नि धर्म से अमवेत व्यक्ति ही विजयी बनते हैं और एकाकी होते हुए भी सहस्रों को पराजित कर देते हैं। जिसके अंदर आग्नेयता प्रज्वलित है, जो भस्मवत् दीन, पददलित तथा निष्प्रभ नहीं है, वही धर्मों, कर्तव्यों, नियमों, व्रतों आदि का पालन-पोषण कर सकता है और वही दिव्यता का संदेश अन्यों तक पहुंचा सकता है।

हे सविता! तुम तीनों लोकों में जाते हो। तुम सूर्य की रश्मियों के साथ एक होते हो। तुम रात्रि के दोनों ओर घेरा डालते हो और हे देव! तुम धर्मों के द्वारा मित्र बनते हो। जब सूर्य की रश्मियां फैलती हैं, तो एक सैकंड में 86 हजार मील की गति से चलकर वे पृथ्वी, अंतरिक्ष तथा द्यौलोक तक अल्पकाल में ही पहुंच जाती हैं। किरणें क्या जा रही हैं मानों उनके साथ समपूर्ण सूर्य ही जा रहा है और सबको प्राप्त हो रहा है। यह सूर्य रात्रि के पूर्व तथा पश्चात दोनों और वर्तमान है और जो आदि तथा अंत में है, वह मध्य में भी है। इस कथन के अनुसार सूर्य का प्रकाश हमारे साथ सदैव विद्यमान रहता है। वह हमारा परित्याग नहीं करता।

स्थान-स्थान में साथी बनाता है।

विशां राजानमद्भु तं अध्यक्षं धर्मणामिमम्। अग्निमीले स उ श्रवत्। ८-४३-२४

अग्नि देव! सुनो तो। मैं तुम्हारी स्तुति कर रहा हूं। तुम प्रजाओं के राजा हो, और धर्म के अद्भुत अध्यक्ष हो।

यहां अग्नि राजा है। धर्म-मर्यादा-पालन पर उसी की दृष्टि रहती है। प्रजा का अंग-अंग अपने धर्मों, कर्तव्यों पर दृढ़ रहे- यह तभी संभव है जब राजा का शासन दंड निरंतर जागरूक बना रहे। अध्यक्ष का अर्थ है, जिसकी आंख सबके ऊपर रहे, जो सबको देखता रहे। यदि हम सदैव अनुमव करते रहें कि कोई हमें देख रहा है, हमारे कर्मों पर किसी की दृष्टि है, तो हम अधर्म से बचे रह सकते हैं और धर्म का पालन करके सामाजिक मर्यादा को तो सुरक्षित रखते ही हैं, साथ ही अपना भी कल्याण-साधन करते हैं।

वृषा सोम द्युमां असि, वृषादेव वृषव्रतः। वृषा धर्माणि दधिसे। ९-६४-१

सोम! तुम वृषा हो, बलवान हो और इसी हेतु चमक रहे हो, द्युतिमान हो। हे देव! तु बलवान हो, इसीलिए तुम्हारे व्रत भी बलवान हैं, अधर्षणीय हैं। तुम बलवान हो, इसीलिए तुम धर्मों को धारण करते हो।

बलवत्ता चमक पैदा करती है। निर्बल निस्तेज होते हैं। जो शक्तिशाली है, वही अपनी तथा दूसरों की अभिलाषाओं को पूर्ण कर सकता है। बलवान के हाथ में ही धर्म की ध्वजा स्थिर होकर फहराती है। निर्बलता, दीनता तथा आशक्तता तो मानव को कर्तव्य पथ से, धर्ममार्ग से च्युत कर देती है। कायर न कर्म कर सकता है, न वीर्यवान बन सकता है और न स्वरूपवान ही हो सकता है।

विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋग्वसः प्रभोस्ते सतः परियन्ति केतवः।

व्यानशिः पवसे सोम धर्मभिः पतिर्विश्वस्य भुवनस्य राजति। ९-८६-५

हे विश्वचक्ष! तुम विश्व भर को देख रहे हो। तुम प्रभु अर्थात् स्वामी हो। तुम ऋभु या दीप्तिमान हो। तुम्हारे ध्वजा-पट, तुम्हारा ज्ञान कराने वाले ज्ञापक केतु समस्त लोकों के चतुर्दिक फहरा रहे हैं। तुम व्यापक हो और धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के धर्मों से ही द्रवित होते हो, ढरते हो, उन पर कृपा की वर्षा करते हो। तुम समस्त भुवन के पालक रूप में चमक रहे हो।

सोम पवमान की दया प्राप्त करनी है, उन्हें अपनी ओर द्रवित करना है, तो धर्मों, नियमों, कर्तव्यों का पालन करो। सोमदेव सतत जागरित रूप में सबकी गतिविधि को देख रहे हैं।

इन्दुर्धर्माणि ऋतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत सानोअव्ये। ६-६७-१२

इन्दु अर्थात् सोमदेव ऋतुओं के अनुकूल धर्मों को धारण करते हैं। दश दिशाएं उन्हें अक्षय शिखर पर सुरक्षित रखती हैं। चंद्र कितने दिनों से हमारे आह्लाद का कारण बना हुआ है। वह कब से आकाश के ऊंचे शिखर पर सुरक्षित है। इसकी सुरक्षित स्थिति का एक ही कारण है कि वह ऋतुओं के अनुकूल अपने धर्मों को धारण करता है। समय आने पर यही औषधियों में रस डालता है, उनके पत्तों, फूलों और फलों को सरस, हरे-भरे, सुंदर और विविध प्रकार के रंगों से संयुक्त करता है। शरद ऋतु की पीयूषवर्षिणी पूर्णिमा का जनक चुंद्र ही है। बासंती वैभव तथा ग्रीष्म काल की खुले मैदानों में छिटकती चांदनी ने किसे आकर्षित नहीं किया? सोमलता के पर्णोंका चंद्र की कलाओं के साथ बढ़ना-घटना प्राचीन विज्ञान की प्रसिद्ध घटना है। इन्हीं धर्मों की रक्षा के कारण दशों दिशाओं द्वारा इसकी रक्षा हो रही है और प्रलय पर्यन्त होती रहेगी। धर्मों रक्षति रक्षितः। धर्मों धारयते प्रजाः। धर्म ही सबको धारण कर रहा है। जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है।

स तू पवस्व परि पार्थिवं रजो दिव्या च सोम धर्ममिः।

त्वां विप्रासो मतिभिर्विचक्षण शुभ्रं हिन्वन्ति धीतिभिः। ९-१०७-२४

हे सोम! तुम धर्मों द्वारा पार्थिव तथा दिव्य लोक के चारों ओर क्षरित हो जाओ। हे विलक्षण! तुम शुभ्र हो। तुम्हें विप्रजन अपनी बुद्धियों और कर्मों द्वारा बढ़ाते हैं। विप्र व्यापक बुद्धि वाले होते हैं। उनकी बुद्धियां संकुचित, स्वार्थ-प्रेरित नहीं होतीं। वे व्यापक दृष्टिकोण से विचार करते हैं। उनकी धीतियां, धारक कर्म शक्तियां भी वैसी ही सर्वजनहित-साधिका होती हैं। OO

कैसे जिए बुढ़ापा

प्रकृति के नियम अनुसार जन्म, जरा व मृत्यु शरीर की जानी-मानी प्रक्रियाएं हैं। कुछ व्यक्ति समय से पूर्व अपने को बूढ़ा महसूस करते हैं तथा कुछ बूढ़े होने पर भी युवा बने रहते हैं, ऐसा क्यों?

यूं तो बुढ़ापे के अनेक लक्षण हैं, जैसे-बालों का सफेद होना, दृष्टि का क्षीण हो जाना, दांतों का गिर जाना, शरीर की चमड़ी लटक जाना, शरीर की प्रतिरोधक शक्ति में कमी का आ जाना आदि। विशेष अंतर युवा व वृद्ध में यह है कि व्यक्ति की रीढ़ में जब तक लचक है, वह जवान है और रीढ़ में कड़ापन आ गया तो समझ लीजिए बुढ़ापे ने घेर लिया। बूढ़ा होने पर भी उसका एहसास न होने के लिए कुछ सूत्र दिए जा रहे हैं-

1. प्रातः नियमित योगाभ्यास, सायं सैर तथा लंबे व गहरे सांस लेना योग विशेषज्ञ से सीखिए।
2. भोजन केवल दो बार ही करें। हो सके तो अनाज एक ही बार लें। दूसरे समय फल व सब्जियां लेने का यत्न करें।
3. भूख से कम व चबा-चबा कर खाना हितकर है।
4. गरिष्ठ भोजन न लेकर सात्विक व पाचक तत्व ही उपयुक्त हैं। अम्ल प्रधान के स्थान पर क्षारीय भोजन अधिक लें।
5. दालों के स्थान पर उबली हुई सब्जियों का प्रयोग उचित है।
6. प्रोटीन-युक्त पदार्थ कम लें। मांसाहार, उत्तेजक पदार्थ, चाय-कॉफी, मिठाइयों का सेवन न करें तो अच्छा है।
7. पंद्रह दिन अथवा एकमाह में आवश्यक हो तो उपवास करें।
8. यदि कोई कष्ट या रोग हो भी जाए तो दृढ़ता से सामना करने का यत्न करें।
9. शरीर को उचित विश्राम देना आवश्यक है, लेकिन यथाशक्ति काम करना उससे भी अधिक आवश्यक है।
10. चिंता व तनाव को त्यागें व मस्त रहना सीखें क्योंकि चिंता चिता से बढ़कर है, घुन के समान लग जाती है। मुर्दों को चिता जलाती है, जिंदों को चिंता जलाती है।
11. अपने अनुभव के आधार पर शिक्षाप्रद बातें अवश्य कहें, लेकिन दूसरों को सुनने की भी आदत डालिए।
12. परोपकार व जन-कल्याण कार्यों में कुछ समय अवश्य लगाएं।
13. दूसरों पर कम से कम आश्रित रहना सीखें।
14. अंत समय तक बच्चों पर आधिपत्य जमाए न रखें, उन्हें स्वतंत्रता से कार्य करने दें और आवश्यकता पड़ने पर ही मार्गदर्शन दें।
15. वर्तमान में जीने की कला सीखें, भूत व भविष्य की चिंता में डूबे न रहें।
16. परिस्थितियों से समझौता करें।
17. तुलसी का सेवन किसी भी रूप में करें।
18. आवश्यकता हो तो त्रिफला का प्रयोग अवश्य करें। त्रिफला यदि घर पर तैयार हो पाए तो उत्तम है, हरड़, बहेड़ा, आंवला 1-2-4 के अनुपात गुठली निकालकर कूट-छान लें।
19. प्रातःकाल नीम की पत्तियां व पांच काली मिर्च चबाकर खाने से निरोगता बनी रहती है।
20. मेथी दाने की चाय भी आरोग्यप्रद है।
21. दुःख में दुःखी न होइये, लेकिन दुःख में हार मानना व सुख में इतराना उचित नहीं।
22. नित्य प्रति परमपिता परमात्मा का स्मरण करें। स्वाध्याय-ध्यान का अभ्यास करके मन को नियंत्रित करने की कला सीखें।
23. यदा-कदा धूपस्नान, मालिश, शुद्धि क्रियाओं (जलनेति, सूत्र नेति व कुंजल) का अभ्यास करें।

किसी महानुभाव ने कहा है- A woman is old, when she looks old, A man is old, when he thinks he is old.

(महिला जब वृद्धा दिखने लगे तो वह वृद्धा हो जाती है किन्तु पुरुष जब यह सोचता है कि वह वृद्ध हो गया है तब वह वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है)।

उपर्यक्त सूत्रों को श्रद्धा से जीवन में उतारने पर आप सचमुच अपने आप में चेतनता का अनुभव करेंगे व शतायु होंगे।

OO

---

1. जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं।..... **(सत्यार्थ. समु. 7)**
2. जो परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ सुख के लिए दे रखे हैं उसके गुण भूल जाना ईश्वर ही की न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।..... **(सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास 7)**
3. जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया या मुठी में घर लिया ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता वैसे ही अनन्तर सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना कभी नहीं सिद्ध हो सकता।..... **(सत्यार्थ प्र.स. 7)**

समाचार दर्पण

- 3 सितम्बर केंद्रीय आर्य युवक परिषद के तत्वावधान में दिवान हाल आर्य समाज में 39वां युवा सम्मेलन मनाया गया।
- 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस आर्य समाज, आर्ष गुरुकुल नोएडा में मनाया गया।
- 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस आर्य समाज, आर्ष गुरुकुल नोएडा में मनाया गया।
- अतंर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन 6 से 8 अक्टूबर 2017 बर्मा में आयोजित किया जा रहा है।
- भव्य ऋषि मेला 27 से 29 अक्टूबर 2017 ऋषि उद्यान अजमेर में आयोजित होगा।

  आर्य महासम्मेलन 5 नवम्बर नवांशहर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा आयोजन जा रहा है।
- आर्य समाज, आर्ष गुरुकुल, वानप्रस्थाश्रम बी–69, सेक्टर–33 नोएडा का भव्य वार्षिकोत्सव 6 से 10 दिसम्बर, 2017 में आयोजित किया जाएगा। आप सपरिवार सादर आमंत्रित हैं।
- गुरुकुल महाविद्यालय आमसेना, उड़ीसा– स्वर्ण जयंती महोत्सव 23 से 25 दिसम्बर 2017 तक आयोजित किया जा रहा है।
- 20 अक्टूबर 2017 केंद्रीय आर्य युवक परिषद के तत्वावधान में महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस के अवसर पर भजन संध्या का कार्यक्रम दिल्ली हाट पीतमपुरा 4 बजे से 8 बजे तक आयोजित किया जा रहा है।

स्वामी दयानंद सरस्वती सूक्ति

- जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसको वैसा ही वर्तमान करना चाहिए अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिए परमेश्वर की प्रार्थना करे उसके लिए जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करें। अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है।

  - सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास-7
- दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिए।

  - सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास-4
- जब तक इस होम का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए।

  - सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास-7
- इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। - स. प्रकाश समुल्लास-7
- 'जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को 'जीव' मानता हूं। - सत्यार्थ-स्वमन्त
- क्या पाषाणादि मूर्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी लाब सकता है? नहीं नहीं, मूर्तिपूजा सीढ़ी नहीं किंतु एक बड़ा खाई है जिसमें गिर कर चकनाचूर हो जाता है।

  - सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास-11
- जैसे 'सक्कर सक्कर' कहने से मुख मीठा नहीं होता वैसे सत्यभाषणादि कर्म किये बिना 'राम राम' कहने से कुछ भी नहीं होगा। - सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास-11
- चारों वेदों में ऐसा नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किंतु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है। - स. प्र. स.-7

'विश्ववारा संस्कृति' के नियम व सविनय निवेदन

1. यदि 'विश्ववारा संस्कृति' दिनांक 15 तक नहीं पहुंचती है तो आप प्रधान संपादक के नाम पत्र डालें। पत्र मिलते ही 'विश्ववारा संस्कृति' पुनः भेज दी जायेगी।

2. वार्षिक शुल्क तथा आजीवन शुल्क मनीआर्डर द्वारा आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा के नाम भेजें। वीपी रजिस्ट्री द्वारा नहीं भेजा जायेगा।

3. लेख संपादक 'विश्ववारा संस्कृति' के नाम भेजें, लेख छोटे, सरल, संक्षिप्त होने चाहिए तथा स्पष्ट, शुद्ध एवं सुंदर लेख कागज के एक ओर लिखे होने चाहिए।

4. 'विश्ववारा संस्कृति' में विज्ञापन भी दिये जाते हैं, परंतु विज्ञापन शुद्ध एवं वास्तविक वस्तु का ही दिया जायेगा।

5. यह 'विश्ववारा संस्कृति' पत्रिका समाज-सुधार की दृष्टि से मानव कल्याणार्थ निकाली जाती है। इसमें आपको धर्म, यज्ञ कर्म, समाज सुधार, देश व समाज की स्थिति, ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य, योगासन, सदाचार, संस्कार, नैतिकता, वैदिक विचार, शिक्षा आदि एवं अन्य ऐसे विषयों पर लेख पढ़ने को मिलेंगे।

6. 'विश्ववारा संस्कृति' के दस ग्राहक बनाने वाले सज्जन को एक वर्ष तक निःशुल्क 'विश्ववारा संस्कृति' भेजी जायेगी तथा पचास ग्राहक बनाने वाले सज्जन को दो वर्ष निःशुल्क पत्रिका भेजी जायेगी तथा उसका फोटो सहित जीवन-परिचय 'विश्ववारा संस्कृति' में निकाला जायेगा।

7. अन्य पत्र-पत्रिकाओं में पहले छपा हुआ लेख 'विश्ववारा संस्कृति' में नहीं छापा जायेगा।

8. अनाधिकृत रूप से लिए लेख, रचना, कविता के लिए प्रेषक ही उत्तरदायी होंगे।

आर्य कै. अशोक गुलाटी
प्रबंध संपादक

'विश्ववारा संस्कृति'
आर्य समाज, बी-69, सेक्टर-33, नोएडा, उप्र
संपर्क सूत्र : 0120-2505731, 4206693
9871798221, 9555779571
ई-मेल : info.aryasamajnoida33@gmail.com

हिन्दी के उन्नायक : स्वामी दयानंद सरस्वती

(गतांक से आगे...)

स्वामी दयानंद सरस्वती का जन्म सन् 1824 में गुजरात के मोरवी नगर में हुआ था और निधन 30 अक्टूबर, 1883 को अजमेर में हुआ। उनका वास्तविक नाम मूलशंकर था। उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पिता से ग्रहण की। पिता से ही संस्कृत का ज्ञान अर्जित किया और वेदों का पाठ सीखा। शिवरात्रि के दिन शिव मंदिर में रात्रि जागरण की एक घटना ने बालक मूलशंकर को आंदोलित कर इस सीमा तक मथा कि उसका मन मस्तिष्क चिंतन की नई-नई दिशाओं में कुछ खोजने और पाने को आतुर हो उठा। चिंतन-मनन के कई पड़ावों से गुजरकर वे उन्नीसवीं सदी के स्वामी दयानंद सरस्वती बने तथा चिंतक और विचारक की भूमिका में नवजागरण का संदेश लेकर अपने कर्मक्षेत्र में अवतरित हुए। गुरु दंडी स्वामी विरजानंद सरस्वती की प्रेरणा से उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की, जिसने राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और सामाजिक जागरण के साथ-साथ हिंदी भाषा और साहित्य को भी संवर्धित किया। यह कम उल्लेखनीय नहीं है कि स्वामीजी की भाषा गुजराती थी। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे, लेकिन उन्होंने हिंदी को जन-जन के लिए उपयुक्त भाषा मानकर उसे 'आर्य भाषा' की संज्ञा दी। इस 'आर्य भाषा' को राष्ट्रव्यापी बनाने का सपना संजोया- 'मेरी आंखें तो उस दिन को देखने के लिए तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब भारतीय एक भाषा को समझने और बोलने लग जाएंगे।' स्वामीजी स्वभाषा, स्वधर्म और स्वसंस्कृति को राष्ट्रीयता का रचनात्मक और भावात्मक आधार मानते थे, इसलिए वे भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक् शिक्षा और सांस्कृतिक भिन्नता तथा व्यवहार का भेद मिटाना चाहते थे। **(शेष अगले अंक में...)**

आरडब्ल्यूए सेक्टर-12, नोएडा में आर्ष गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने प्रतियोगिता में भाग लेकर पारितोषक प्राप्त किए।

श्री परेश गुप्ता उपमंत्री के सुपुत्र डा. निशांत व उनकी धर्मपत्नी के द्वारा ब्रह्मचारियों को स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान की गई और दांतों का चेकअप किया गया।

स्वयं बुझा दिवाली के दिन, ज्योतिर्मय कर गया विश्व को

आर्ष गुरुकुल नोएडा के आचार्य डा. जयेन्द्र कुमार आर्य समाज राजा पार्क आदर्शनगर जयपुर में प्रवचन करते हुए। इस अवसर पर आचार्य जी के प्रवचन का श्रवण करते श्रोतागण

विश्ववारा संस्कृति

आर्य समाज, बी-69, सैक्टर-33, नोएड़ा (उ.प्र.) दूरभाष : 0120-2505731, 4206693